इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BHIC-107
भारत का इतिहास-IV
(*c.*1206-1550)

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है आज के युग में तो यह लोकतन्त्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गाँधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is liberating force, and in our age it is also democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

- Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

BHIC-107

भारत का इतिहास
(*c.*1206-1550)

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विशेषज्ञ समिति

प्रो. स्वराज बासु
निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. रंजीता दत्ता
सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. मीनाक्षी खन्ना
इतिहास विभाग, इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय,
दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली

प्रो. आभा सिंह
इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. तस्नीम सुहरावर्दी
इतिहास विभाग, सेंट स्टीफन कॉलेज
दिल्ली यूनिवर्सिटी, दिल्ली

प्रो. ए. आर. खान ***(संयोजक)***
इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक : प्रो. आभा सिंह

पाठ्यक्रम संयोजन दल : प्रो. आभा सिंह डॉ. दिव्या सेठी

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई सं.	इकाई लेखक	अनुवादक
1.	प्रो. आभा सिंह सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली; और प्रो. रामेश्वर बहुगुणा, इतिहास एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्री आरिफ सम्मा श्री मनीश्वर यादव; श्री चन्द्रशेखर; सुश्री शहनाज़ बानो और श्रीमती अनीता चौधरी, नई दिल्ली
2.	डॉ. इफ्तिखार अहमद खां इतिहास विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा; और प्रो. रविंद्र कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	श्री मोज़ेज़ माइकेल एवं श्रीमती ऊषा मलिक नई दिल्ली
3.	डॉ. किरण दत्तार जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; प्रो. ए. जान कैसर, सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़; प्रो. जिगर मोहम्मद, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	श्री जफ़र नकवी; और श्री जितेश कुमार जोशी, नई दिल्ली
4.	डॉ. किरण दत्तार जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; प्रो. शीरीन मूसवी, सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	श्री जफ़र नकवी; श्री आरिफ सम्मा; और श्री जितेश कुमार जोशी नई दिल्ली
5.	प्रो. अहमद रज़ा खान और प्रो. आभा सिंह सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इग्नू, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी श्री ज़फर नक़वी, नई दिल्ली
6.	डॉ. संगीता पांडे सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्रीमती ऊषा मलिक; और श्री आरिफ सम्मा नई दिल्ली
7.	डॉ. संगीता पांडे सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्रीमती ऊषा मलिक और श्री आरिफ सम्मा, नई दिल्ली
8.	डॉ. फिरदौस अनवर किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; प्रो. सुनीता ज़ैदी, इतिहास तथा संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्रीमती ऊषा मलिक; और श्री आरिफ सम्मा, नई दिल्ली
9.	प्रो. शीरीन मूसवी सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़; मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़; और डॉ. किरण दत्तार, जानकी देवी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जफ़र नकवी; और श्री आरिफ सम्मा, नई दिल्ली
10.	प्रो. शीरीन मूसवी सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़	श्री जफ़र नकवी; और श्री आरिफ सम्मा, नई दिल्ली

11.	प्रो. ए. जान कैसर सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़	श्री जफ़र नकवी; और श्री आरिफ सम्मा नई दिल्ली
12.	प्रो. शीरीन मूसवी सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़; और प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	श्री आरिफ सम्मा; और श्री जफ़र नकवी नई दिल्ली
13.	डॉ. दिव्या सेठी और डॉ. सोहिनी बासक, सेंटर फार हिस्टॉरिकल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	डॉ. दिव्या सेठी, सेंटर फार हिस्टॉरिकल स्टडीज, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
14.	प्रो. रामेश्वर बहुगुणा इतिहास एवं संस्कृति विभाग जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्री आरिफ सम्मा श्री मनीश्वर यादव; श्री चन्द्रशेखर; और कु. शहनाज़ बानो, नई दिल्ली
15.	प्रो. रामेश्वर बहुगुणा इतिहास एवं संस्कृति विभाग जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्री आरिफ सम्मा श्री मनीश्वर यादव; श्री चन्द्रशेखर; और कु. शहनाज़ बानो, नई दिल्ली
16.	प्रो. आभा सिंह सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश जोशी नई दिल्ली
17.	प्रो. रविन्द्र कुमार सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश जोशी नई दिल्ली
18.	प्रो. रविन्द्र कुमार सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री जितेश जोशी नई दिल्ली
19.	प्रो. रविन्द्र कुमार सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्रीमती सीमा कुमारी; श्री आरिफ सम्मा श्री मनीश्वर यादव; श्री चन्द्रशेखर; और कु. शहनाज बानो, नई दिल्ली

सामग्री एवं प्रारूप संपादन

प्रो. आभा सिंह
इतिहास संकाय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

हिन्दी संयोजक : प्रो. आभा सिंह

आवरण सज्जा साभार

फोटो साभार : स्तम्भ, अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, वरूण शिव कपूर, नई दिल्ली, अगस्त 2011 (Under Creative Commons Attribution 2.0)
फोटो स्रोत : विकीमीडिया कॉमन्स
https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Adhai_Din-ka-Jhonpra_Column_detail_(6134514518).jpg

मुद्रण प्रस्तुति	आवरण सज्जा
श्री तिलक राज	**सुश्री अरविन्दर चावला**
सहायक कुलसचिव	ग्राफिक डिज़ाइनर
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली	नई दिल्ली

जुलाई, 2021

© *इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,* 2021
ISBN: 978-93-91229-67-2
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ़ या किसी अन्य रूप में, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित और अधिक सूचना मैदान गढ़ी, नई दिल्ली स्थित विश्वविद्यालय के कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली की ओर से कुलसचिव, एमपीडीडी, इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
लेज़र टाइपसेट : टेसा मीडिया एण्ड कंप्यूटर्स
मुद्रक : प्रकाश पैकेजर्स, प्रथम तल, शगुन पैलेस, हज़रतगंज, लखनऊ–226001 | फोन : 1800 180 5304

पाठ्य विवरण

			पृष्ठ संख्या
पाठ्यक्रम परिचय			**7**
खंड I	:	**दिल्ली सल्तनतः एक व्याख्या**	**11**
इकाई 1	:	ऐतिहासिक स्रोतों का सर्वेक्षण	13
खंड II	:	**राजनीतिक संरचनाएँ**	**47**
इकाई 2	:	दिल्ली सल्तनतः प्रसार और सुदृढ़ीकरण	49
इकाई 3	:	संस्थागत विकासः सुल्तान, अमीर और *उलमा*	67
इकाई 4	:	प्रशासनिक संस्थाएँ	87
इकाई 5	:	दक्खनी राज्य	104
इकाई 6	:	विजयनगर साम्राज्यः प्रसार और सुदृढ़ीकरण	122
इकाई 7	:	संस्थागत विकासः राजत्व तथा नायक प्रणाली	131
इकाई 8	:	पन्द्रहवीं शताब्दी में नवीन राज्यों का उदय	140
खंड III	:	**समाज और अर्थव्यवस्था**	167
इकाई 9	:	भू-राजस्व प्रशासन	169
इकाई 10	:	ग्रामीण समाज	181
इकाई 11	:	तकनीकी और समाज	188
इकाई 12	:	नगरीय अर्थव्यवस्था तथा मुद्रीकरण	206
इकाई 13	:	आंतरिक और समुद्री व्यापार	221
खंड IV	:	**धार्मिक विचारधाराएँ एवं दृश्य संस्कृति**	241
इकाई 14	:	भक्ति परम्परा	243
इकाई 15	:	सूफ़ी परम्परा	258
इकाई 16	:	वेदांतिक और श्रमणिक परम्पराएँ	273
इकाई 17	:	मंदिर, मस्जिद और दरगाहः स्वरूप, संदर्भ एवं अभिप्राय	285
इकाई 18	:	राजमहल, किले, मकबरे तथा सार्वजनिक निर्माणः स्वरूप, संदर्भ एवं अभिप्राय	308
इकाई 19	:	चित्रकला	327

पाठ्यक्रम अध्ययन संबंधी दिशा-निर्देश

इस पाठ्यक्रम में हमने अध्ययन सामग्री के प्रस्तुतिकरण का समरूप पैटर्न अपनाया है। यह पाठ्यक्रम परिचय से प्रारम्भ होता है, जिसमें कालक्रमानुसार विकास के महत्वपूर्ण चरणों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें 4 विशिष्ट खंड हैं, जिन्हें 19 इकाइयों में बाँटा गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इकाइयों की संरचना एक समान रखी गई है। इकाई के प्रथम भाग, उद्देश्य का प्रयोजन आपको इकाई के अध्ययन से संबंधित विशिष्ट मुद्दों से अवगत कराना है। कृपया इन उद्देश्यों को ध्यान से पढ़िए और प्रत्येक इकाई के भाग को पढ़ने के बाद खुद पुनः उस पर चिन्तन कीजिए। इकाई की प्रस्तावना आपको इकाई की विषय-वस्तु से परिचित कराती है तथा आपको इकाई की विषय-वस्तु के संबंध में दिशा-निर्देश देती है। तत्पश्चात् पाठ्यक्रम की सुगमता के लिए विभिन्न भागों तथा उपभागों में मुख्य विषय की चर्चा की गई है। इकाई के बीच में बोध प्रश्न दिए गए हैं। हमारा निवेदन है कि आप जब भी इन प्रश्नों तक पहुँचें, इन्हें अवश्य पढ़ें तथा हल करें। यह न केवल आपको, आपके स्वयं अध्ययन के मूल्यांकन में सहायक होगा, बल्कि इससे आप यह भी जाँच सकेंगे कि आपने विषय विशेष को कितना समझा। अपने उत्तर की जाँच आप सारांश के बाद दिए गए उत्तर संबंधित मुख्य बिंदुओं से कीजिए। प्रत्येक इकाई के अंत में शब्दावली प्रदान की गई है, जिसे इकाई में बोल्ड में दर्शाया गया है। प्रत्येक इकाई के अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची प्रदान की गई है। इस सूची में उन स्रोतों तथा ग्रंथों की चर्चा की गई है जो आपके अध्ययन के लिए उपयोगी हैं अथवा अध्ययन सामग्री के निर्माण के दौरान प्रयुक्त की गयी हैं। आप उन पर अवश्य नज़र डालें। हमने कुछ शैक्षणिक वीडियो अध्ययन समझ को बढ़ाने के लिए दिए हैं। कृपया आप इन वीडियो को देखें, यह आपकी संबंधित विषय-वस्तु की व्यापक समझ को बढ़ाने में सहायक होगा।

पाठ्यक्रम परिचय

दिल्ली सल्तनत की स्थापना और सुदृढ़ीकरण को मध्य एशिया के घटनाक्रमों से अलग रखकर नहीं देखा जा सकता। इस्लाम का उदय, तुर्क आक्रमण और मंगोलों के हमलों ने न केवल मध्य एशिया की राजव्यवस्थाओं को हिला कर रख दिया था बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप, विशेषकर उत्तरी भारत, पर भी अपना प्रभाव छोड़ा।

इस्लाम का उदय इस काल की सर्वाधिक विशिष्ट घटना थी। अतः इसकी पृष्ठभूमि को समझे बिना, जिसने 12वीं शताब्दी से भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीतिक पटल पर अपना वर्चस्व बनाए रखा, भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम को समझना मुश्किल होगा। दिल्ली के शासक तुर्क थे और इस्लाम के अनुयायी थे। यहाँ हमें नए शासक वर्ग का परिवेश, जहाँ से वे आ रहे थे तथा उनकी पृष्ठभूमि क्या थी, को समझना उचित होगा। इस्लाम का उदय आठवीं शताब्दी में हुआ और शीघ्र ही उसने अरब, इराक, सीरिया, ईरान और उत्तरी अफ्रीका पर और कुछ हद तक अंदूलेसिया (स्पेन) पर पवित्र खलीफाओं (632-661) तथा उनके उमय्यद (661-750) उत्तराधिकारियों के अधीन अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। अब्बासिद खिलाफत (750-900) के अधीन इस्लाम ने वास्तविक शांति और समृद्धि का चरण देखा। अरबी समस्त इस्लामिक विश्व की भाषा बन गई। लेकिन 900-1000 का काल प्रधानता खिलाफत के बिखराव का काल था।

10वीं सदी के बाद से बगदाद के ख़लीफ़ा की राजनीतिक और प्रशासनिक शक्तियाँ कमज़ोर होती जा रही थीं जिससे बगदाद, स्पेन और मिस्र में ख़िलाफ़त बिखरती चली गई। तथापि, ख़लीफ़ा के नाम की सत्ता को सर्वोच्च समझा जाता था और कोई भी उसका तिरस्कार करने की हिम्मत नहीं करता था। यहाँ तक कि महमूद ग़ज़नी के समान शक्तिशाली शासक को भी विनम्रतापूर्वक माफी माँगनी पड़ी थी जब ख़लीफ़ा द्वारा समरक़न्द को उसके हवाले करने की माँग को ख़ारिज कर दिया गया था। ख़लीफ़ा की कमज़ोर होती ताक़त ने इराक़, ईरान (समानिद और बुवाहिद) तथा तुर्किस्तान में कई 'छोटी-छोटी' राजव्यवस्थाओं को जन्म दिया; जबकि सीर दरिया (Jaxartes) के पार के इलाके में तुर्क, तार्तार और मंगोलों का राज था। इस्लाम के भीतर भी सुन्नी, शिया और ख़ारिज़ी जैसे कई फ़िरक़े उभर चुके थे।

यह काल फारसी भाषा के नवजागरण का काल भी था जिसने धीरे-धीरे कुलीनों और साहित्यकारों की भाषा के रूप में अरबी भाषा का स्थान ले लिया। 'फ़ारसी क्रांति' ने 'अरब' श्रेष्ठता का अंत कर दिया। उत्तर-1000 से लेकर 1220 के दशक की अवधि सेल्जुक, ख्वारिज़्म, गज़नवी जैसे तुर्क-ईरानी साम्राज्यों/आदर्शों और राजवंशों के प्रभुत्व द्वारा चिह्नित थी। इसके अतिरिक्त इस्लामिक सीमाओं के विस्तार ने एक के बाद एक तुर्क जनजाति को इस्लाम की छत्रछाया में ले लिया था। इसने एक बार फिर अरब और ईरान के नक्शे को नया रूप दिया। तुर्क श्रेष्ठ सेनानायक होने के कारण इस्लामी विश्व की लगभग सभी सेनाओं का नेतृत्व कर रहे थे। 10वीं शताब्दी के बाद के अधिकांश मुस्लिम शासक वंश तुर्क जनजातीय समूह से सम्बंध रखते थे; यद्यपि ईरानियों ने प्रशासन, कला और साहित्य के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बनाए रखा।

962 सी ई में तुर्कों को संप्रभुता हासिल करने का अवसर मिला। बुखारा के सामानिद शासक की मृत्यु के बाद अलप्तगीन, खुरासान का तुर्क गवर्नर, ने ग़ज़नी में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। यह सुबुक्तगीन (मृ. 997) का पुत्र महमूद था, जो पहला मुस्लिम 'सुल्तान' था और जिसका उदय एक 'विश्वविजेता' के रूप में हुआ, जो एक ख्याति प्राप्त अनुश्रुति बन गया। अपने चालीस वर्षों के निरंतर युद्ध-अभियानों में उसे 'एक' भी पराजय का सामना नहीं करना पड़ा। उसने पंजाब से कैस्पियन सागर तक, समरक़न्द से रे तक शासन किया। महमूद ने हिंदुस्तान की सरहदों को सत्रह बार पार किया (1000-1027) और अपराजेय बना रहा। तथापि, जैसा कि मोहम्मद हबीब उल्लेख करते हैं 'धन और सत्ता का लालच न कि इस्लाम को फैलाने की प्रबुद्ध इच्छा उसके हिंदुस्तान के अभियानों का उद्देश्य था'। वस्तुतः, हिंदुस्तान का 'उसके सपनों में कोई स्थान न था'। वह एक 'तुर्क-ईरानी साम्राज्य' खड़ा करना चाहता था और उसके हिंदुस्तान में किए गए हमले इस 'साध्य के साधन' मात्र थे।

महमूद के पतन ने सेल्जुक़ों के उदय को संभव बनाया, जिनके संरक्षण में फ़ारसी अदब फला-फूला और अपनी श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ। यद्यपि मध्य 12वीं शताब्दी ग़ज़नवी और सेल्जुक़ों के पतन की साक्षी बनी और इसने, एक ओर तो, ख़ुरासान और ग़ौर के उदय का रास्ता तैयार किया, वहीं दूसरी ओर, मंगोलों के उदय का मार्ग भी प्रशस्त किया, जिन्होंने संपूर्ण मध्य एशिया और ईरान को आक्रांत कर दिया था।

मंगोल स्टेपी के मैदानों में निवास करते थे तथा आमतौर पर ख़ानाबदोश थे और पशु व अश्व पालन, शिकार और मत्स्य पालन पर निर्वाह करते थे। कृषि वहाँ लगभग अनुपस्थित थी। वह *युर्त* (तंबू के समूह वाले गाँव) में रहते थे। अपवाद-स्वरूप अरघुनों को छोड़कर लेखन के लिए लिपि के ज्ञान का लगभग अभाव था। यद्यपि चंगेज़ ख़ान लिख और पढ़ नहीं सकता था, वह मंगोल भाषा बोलता था। वे एक ख़ानाबदोश ज़िंदगी जीते थे, किंतु सैन्य विज्ञान के मामले में स्टेपी अन्य सभ्यताओं से काफ़ी आगे थे। यह दिलचस्प तथ्य है कि वे किसी भी धर्म/धार्मिक रीतियों/अनुष्ठानों से पूर्णतः अजनबी थे, केवल कुछ नैतिक नियमों को छोड़कर; धार्मिक सहिष्णुता वहाँ एक आदर्श था। मंगोल *उलूसों* में बँटे हुए थे, जिनका स्वरूप सैन्य था। गोबी रेगिस्तान के उत्तर में दादा *उलूस* (मूल मंगोल) निवास करती थी जो कुबलई, जो प्रथम *ख़ाक़ान* था, के वंशज होने का दावा करते थे; मंगोलों के पूर्व में तार्तार निवास करते थे और उसके भी पूर्व में मंचू थे। चंगेज़ ख़ान का सबसे बड़ा योगदान इस तथ्य में निहित है कि उसने स्टेपी के विभिन्न बिखरे हुए सामाजिक समूहों को 'एक' 'एकल', 'संगठित' केंद्रीकृत सत्ता के अधीन एकीकृत किया।

इन समस्त घटनाक्रमों का भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीतिक गतिविधियों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इसके विपरीत इस काल का हिंदुस्तान किसी एकल नेतृत्व से विहीन था, बड़ी संख्या में *सामंत, ठाकुर, राय, राणक* और *रावत* मौजूद थे; जो और भी आगे गोत्रों-उपगोत्रों में विभाजित थे तथा स्थानीय स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत थे। इस सबके बीच किसी भी प्रकार का परस्पर सहयोग नामुमकिन था। आपसी झगड़ों ने उन्हें किसी साझे शत्रु (बाहरी ख़तरे) के ख़िलाफ़ संगठित होने से रोके रखा।

लगभग 150 वर्षों के अंतराल के बाद ग़ौर से तुर्क विजेताओं की एक अन्य लहर ने भारतीय सरहदों को पार किया और इस समय वे यहीं रुक जाने वाले थे। ग़ौर के शंसबानी वंश के मोइज़ुद्दीन मुहम्मद बिन साम के अधीन हिंदुस्तान में तुर्कों की दूसरी लहर आई। शीघ्र ही मुल्तान, उच्छ, लाहौर, पेशावर, तबरहिंद पर क़ब्ज़ा कर लिया गया, जबकि तराइन का युद्ध (1192) अंतिम रूप से निर्णायक साबित हुआ। 1206 में मोइज़ुद्दीन ने ऐबक को हिंदुस्तान में अपनी सत्ता का दायित्व सौंपा; दुर्भाग्यवश ग़ौर लौटते वक़्त उसकी हत्या कर दी गई।

इस पृष्ठभूमि में यह पाठ्यक्रम भारत में तुर्की सल्तनत की स्थापना पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। यह पाठ्यक्रम आपको ऐतिहासिक स्रोत सामग्री से भी परिचित कराता है ताकि इस काल के इतिहास लेखन हेतु उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों को आप समझ सकें। यह काल अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के संदर्भ में अत्यंत जीवंत है। इस काल ने न केवल दो अपरिचित भाषाओं, फारसी और अरबी, की भारत में शुरुआत को देखा, बल्कि यही वह काल है जब क्षेत्रीय भाषाओं और उससे संबंधित अपार साहित्य का उदय हुआ (**इकाई 1**)। आप इस काल के ऐतिहासिक लेखन की संरचना में परिवर्तनों को देख पाएंगे। काग़ज़ के प्रचलन की शुरुआत के साथ धीरे-धीरे पांडुलिपियों ने, सूचना के प्रमुख स्रोत के रूप में, अभिलेखों और पुरालेखशास्त्र का स्थान ले लिया। इसके अतिरिक्त, क्रमिक रूप से, शासक वर्ग की भाषा के रूप में संस्कृत का स्थान फ़ारसी ने ले लिया।

खंड II तुर्क सल्तनत की स्थापना और इसके उत्तर, दक्षिण तथा दक्खन में विस्तार को समाहित करता है (**इकाई 2**)। इसमें मध्य एशियाई राजव्यवस्था के विकासक्रम के भारतीय राजव्यवस्था पर प्रभाव, मंगोलों के आक्रमण, दिल्ली सुल्तानों की मंगोल नीति और साथ ही हिंदुस्तानी सरहदों पर निरंतर हो रहे मंगोल आक्रमणों के प्रभाव व परिणामों की चर्चा भी की गई है। सुल्तान का पद, उसके ख़लीफ़ा और *उलमा* व *उमरा* से उसके परस्पर संबंध, **इकाई 3** की विषय-वस्तु है। आप यह भी पाऐंगे कि नए शासक वर्ग अपने साथ खुद की शासन प्रणाली और संस्थाएँ लेकर आए, *इक़्ता* इस तरह की एक प्रमुख संस्था थी जिसके माध्यम से सुल्तानों को साम्राज्य के दूरस्थ इलाकों में

भी अपनी सत्ता सुदृढ़ करने में सफलता मिली (**इकाई 4**)। यह इकाई प्रारंभिक सल्तनत कालीन राजनीति में *तुर्कान-ए चिहिलगानी* ('चालीस' अमीरों का समूह) की भूमिका का भी अवलोकन करती है। फिरोज़ शाह तुगलक के समय से सल्तनत का बिखराव शुरू हो गया था और 1398 में तैमूर के आक्रमण ने इसके पतन को यथार्थ कर दिया। इस बिखराव ने सल्तनत की राजव्यवस्था को कई केंद्रों में विखंडित कर दिया। 15वीं शताब्दी में कई क्षेत्रीय राज्यों का उदय हुआ जो **इकाई 8** में चर्चा की विषय-वस्तु है। दक्खन और दक्षिणी भारत में राजनीतिक संरचनाओं की चर्चा **इकाई 5**, **6**, और **7** में की गई है। यह इकाइयाँ अपनी चर्चा इस पर केंद्रित करती हैं कि कैसे चालुक्यों (दक्खन में) तथा चोलों (दक्षिण में) के पतन के साथ काकतीय और यादवों (उत्तर में) और पांड्यों और होयसलों का उदय (दक्षिण में) हुआ। काकतीय और यादवों के पतन ने दक्खन में बहमनी सल्तनत के उदय की पृष्ठभूमि तैयार की, वहीं पांड्यों और होयसलों के पतन ने दक्षिण भारत में शक्तिशाली विजयनगर साम्राज्य के उदय को संभव बनाया। बहमनी और विजयनगर शासकों के उदार संरक्षण में कला और संस्कृति का विकास हुआ।

खंड III तुर्क सुल्तानों की अर्थव्यवस्था पर केंद्रित है। प्रारंभिक तुर्क सुल्तान प्राप्त 'भेंट-नज़राने' से संतुष्ट थे, धीरे-धीरे वे ग्रामीण इलाकों में पैंठ बनाने लगे और मौजूदा व्यवस्था में बदलाव करने के बाद उन्होंने स्वयं के राजस्व आकलन की व्यवस्था को संगठित किया। पूर्ववर्ती शासक अभिजात्य वर्गों को ग्रामीण क्षेत्रों की ओर धकेल दिया गया, जहाँ वे उच्च अधिकार प्राप्त वर्गों के रूप में स्थापित हुए (**इकाई 9** और **10**)। मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा नग़दी फसलों को उपजाने पर ज़ोर देकर और उदारतापूर्ण कृषि ऋण (*सोंधर*) वितरित कर कृषि क्षेत्र में भी मूलगामी परिवर्तन लाए गए। कृषि को और बढ़ावा फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ द्वारा स्थापित नहरों के जाल से मिला। तुर्क अपने साथ नई प्रौद्योगिकी भी लेकर आए थे, जिन्होंने कृषि और शिल्प को क्रांतिकारी ढंग से परिवर्तित कर दिया। *रहट* (पर्शियन व्हील; Pershian-wheel) के इस्तेमाल की शुरुआत ने शुष्क क्षेत्रों में कृषि को क्रांतिकारी ढंग से बदल दिया; वहीं *चरखे* और ट्रेडल/पिट लूम (पांव से चलाने वाले करघे) ने कताई तथा बुनाई की प्रक्रिया को सुगम बना दिया, जिसने 'वस्त्र-क्रांति' को जन्म दिया (**इकाई 11**)। प्रशासन, अर्थव्यवस्था तथा मुद्रा के क्षेत्र में केंद्रीकरण तथा समरूप कराधान, इन सबने व्यापार और वाणिज्य और नग़द मुद्रा के प्रचलन और मुद्रा प्रवाह को सुगम बनाया, जिसने, दूसरी ओर, शहरीकरण की प्रक्रिया को तीव्र किया। साथ ही, यह तुर्कों द्वारा लाई गई नई प्रौद्योगिकियों का भी परिणाम था जिसने नए शिल्प और शिल्पकार समूहों को उभरने में सहायता की (**इकाई 12** तथा **13**)।

खंड IV धार्मिक विचारों तथा दृश्यमान संस्कृतियों पर केंद्रित है। दो संस्कृतियों, हिंदू और इस्लाम, के सम्मिलन से धार्मिक विचारों और दृश्यमान संस्कृतियों के क्षेत्र में कई रोचक परिवर्तन हुए। हिंदुस्तान में भक्ति और सूफ़ी विचारों ने ज़ोर पकड़ा, जिनमें से प्रत्येक ने एक दूसरे को प्रभावित किया। इसी प्रकार, भारतीय और इस्लामी वास्तु शैलियों के मिश्रण से एक नई शैली का जन्म हुआ जिसको हिंद-इस्लामी शैली के रूप में जाना जाता है। तुर्क अपने साथ भवन निर्माण की नई तकनीकें मेहराब, गुंबद और चिनाई की बेहतरीन तकनीक (चूने-गारे का इस्तेमाल) लेकर आए थे, जिसने भारतीय वास्तुकला में मेहराबदार शैली (arcuate style) के उदय को संभव बनाया। इसके अतिरिक्त नवीन तुर्क अभिजात्यों और कुलीनों की उपासना और मृतकों को दफ़नाने की ज़रूरतों की माँग ने मस्जिद, मक़बरे और सूफ़ी *ख़ानकाहों* के प्रचलन को संभव बनाया, जिन्होंने भारतीय नगरों के परिदृश्य को पूर्णतः बदल कर रख दिया। सुलेखन, ज्यामितीय डिज़ाइन, और सजावट की नई शैली, *अरबेस्क*, को भी महत्ता मिली।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड I

दिल्ली सल्तनतः एक व्याख्या

समय रेखा

अरबी एवं फारसी ऐतिहासिक परंपराएँ

राजनीतिक वृत्तांतः दिल्ली सल्तनत

हसन निज़ामी

मिन्हाज-उस सिराज जुज़्ज़ानी

ज़ियाउद्दीन बरनी

अमीर खुसरो

थक्कर फेरू

इसामी

शम्स सिराज अफीफ

याह्या अहमद बिन सरहिन्दी

अभिलेख

संस्कृत

अरबी एवं फारसी

मलफूज़ात

अरब भूगोलवेत्ता

इब्न बूतता

क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

फोटोग्राफ : इब्न बतूता के विदेशी वृत्तांत की ऐतिहासिक पांडुलिपि के चुनिंदा पृष्ठ, 1836 सी ई, काहिराः जेपीजी

साभार : ओसामा शुकीर मुहम्मद अमीन; जुलाई 2019; **CC-BY-SA 4.0**

स्रोत : **https://commons.wikimedia.org/wiki/file:historic_copy_of_selected_parts_of_the_travel_ report_by_ibn _battuta,_1836_ce,_cairo.jpg**

इकाई 1 ऐतिहासिक स्रोतों का सर्वेक्षण*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अरबी और फारसी ऐतिहासिक परंपराएँ

1.3 राजनैतिक वृत्तांतः दिल्ली सल्तनत

- 1.3.1 हसन निज़ामी
- 1.3.2 मिन्हाज-उस सिराज जुज़जानी
- 1.3.3 अमीर खुसरो
- 1.3.4 ज़ियाउद्दीन बरनी
- 1.3.5 थक्कर फेरू
- 1.3.6 इसामी
- 1.3.7 शम्स सिराज अफीफ
- 1.3.8 याह्या अहमद बिन सरहिंदी

1.4 *इंशा* (पत्र-लेखन) परंपरा

1.5 आधिकारिक दस्तावेज

1.6 अभिलेख

- 1.6.1 अरबी एवं फारसी अभिलेख
- 1.6.2 संस्कृत अभिलेख

1.7 सूफ़ी लेखन

1.8 अरब यात्रियों के वृत्तांत

- 1.8.1 अरब भूगोलवेत्ताओं के वृत्तांत
- 1.8.2 इब्न बतूता

1.9 संस्कृत साहित्य

1.10 क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य

- 1.10.1 क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की सामाजिक पृष्ठभूमि
- 1.10.2 उत्तर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य
- 1.10.3 दक्षिण भारतीय भाषाओं में साहित्य

1.11 सारांश

1.12 शब्दावली

1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

1.15 शैक्षणिक वीडियो

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली और प्रो. आर. पी. बहुगुणा, इतिहास तथा संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली। इस इकाई के भाग 1.9 और भाग 1.10 इग्नू के पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-03: *भारतः 8वीं सदी से 15वीं सदी तक* के खंड 8, इकाई 33, भाग 33.5-33.8 से लिए गए हैं।

1.0 उद्देश्य

वर्तमान इकाई का उद्देश्य आपको सल्तनत कालीन भारत के ऐतिहासिक लेखन की परंपरा की एक व्यापक झलक प्रस्तुत करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगेः

- अरबी और फारसी इतिहासलेखन की परम्पराओं और उनकी लेखन की शैलियों में अन्तर,
- भारत में/पर लिखे गए कुछ अरबी और फारसी के ऐतिहासिक ग्रंथ,
- राजवंशीय इतिहास लेखन की विशेषताएँ,
- *मलफूज़ात* साहित्यक परंपरा,
- *इंशा* लेखन तथा विभिन्न कालों में *इंशा* परंपरा कैसे विकसित हुई,
- इतिहास लेखन के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में अभिलेख,
- आधिकारिक दस्तावेजों और आदेशों की उपलब्धता ने किस प्रकार मध्यकाल की हमारी समझ को समृद्ध किया,
- भारत पर लिखे गए विदेशी वृत्तांतों की समझ,
- अरब यात्रियों, उनकी भारत संबंधी समझ और सल्तनत कालीन संज्ञान पर उनका प्रभाव,
- इस काल में रचित संस्कृत रचनाओं के स्तर में गिरावट के लक्षण के बारे में,
- उर्दू भाषा की उत्पत्ति के बारे में,
- प्रादेशिक भाषाओं और साहित्य के विकास के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों के बारे में, और
- इस काल में स्थापित सांस्कृतिक और साहित्यिक संश्लेषण के बारे में।

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान इकाई का उद्देश्य तीन बुनियादी सवालों को सम्बोधित करना हैः क) मध्यकालीन इतिहासकारों की इतिहास की समझ। इस संदर्भ में बरनी का बहुत महत्व है; ख) दूसरा सवाल यह है कि उन्होंने क्यों लिखा? उनके लेखन का उद्देश्य क्या था? ये लेखन या तो प्रसिद्धि की इच्छा के लिए लिखे गये थे; या अपने संरक्षकों को खुश करने के लिए; और कई बार पुरस्कारों के लिए; जबकि कुछ ने भावी पीढ़ियों के लिए रिकार्ड छोड़ने के लिए लिखा; ग) तीसरा प्रमुख पहलू यह था कि उनके लेखन पर धार्मिक चर्चाओं का विशेष प्रभाव था; 'ईश्वर'; 'सर्वशक्तिमान की इच्छा' सभी घटनाओं के लिए केन्द्रीय थी। इसका मतलब यह नहीं है कि साज़िश, प्रशासन, आदि उनके लेखन का हिस्सा नहीं था।

कोई इतिहास कैसे लिखे? मध्यकाल के कुछ इतिहासकारों/इतिवृत्तकारों, विशेष रूप से ज़िया बरनी को इतिहास लेखन के महत्व के बारे में पता था (हम उनके बारे में अलग भागों में चर्चा करेंगे); अगर इतिहास के साथ ईमानदारी से पेश ना आया जाए तो वे इसके खतरों के बारे में जानते थे।

इतिहास से तात्पर्य परिवर्तनों से है। हालांकि मध्यकालीन इतिहासकारों का ध्यान राजवंशीय इतिहास पर था, फिर भी वे एक वंश से दूसरे में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जागरूक थे और वे अक्सर विचारों, संस्थाओं और बहुधा (समूहों के बीच) सम्बन्धों के बारे में चर्चा और टिप्पणी करते हैं।

सल्तनत काल साहित्य के समृद्ध रूप में फलने-फूलने का युग रहा है। यह वह युग था जब संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में असाधारण प्रगति के साथ-साथ नई भाषाओं का प्रयोग प्रारंभ हुआ। इस सांस्कृतिक और साहित्यिक संशलेषण का प्रतिबिम्बन, फारसी एवं संस्कृत के मध्य आपसी आदान-प्रदान द्वारा तथा उर्दू जैसी संशलेषणात्मक भाषा की उत्पत्ति और विकास में हुआ। संस्कृत और फारसी से काफी हद तक प्रभावित प्रादेशिक भाषाओं और साहित्य में इस युग की धार्मिक, सामाजिक और लोकप्रिय अभिप्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब था। अमीर खुसरो और जायसी जैसे मुस्लिम

लेखकों की हिंदी रचनाएँ और इसी प्रकार बंगाली मुस्लिम कवियों द्वारा रचित बंगाली-वैष्णव काव्य भी सांस्कृतिक संशलेषण के इस युग की विशिष्टताएँ थीं।

1.2 अरबी और फारसी ऐतिहासिक परंपराएँ

अरबी इस्लामी विश्व की भाषा थी इसलिए इस काल में सबसे पहले उपलब्ध ऐतिहासिक लेखन अरबी में लिखा गया। के. ए. निज़ामी ने ठीक ही कहा है कि 'अरब परंपरा... ने लोकतान्त्रिक आदर्शों को संजोया और वह इतिहास को राष्ट्रों की जीवन गाथा के रूप में मानती है'। इस प्रकार उनके आख्यान न केवल शासकों, राजनैतिक घटनाओं और शिविरों की कहानी के इर्द-गिर्द घूमते हैं; बल्कि वे आम आदमी के जीवन की बात करते हैं। अरबी ऐतिहासिक परंपरा राजनैतिक और सैन्य घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को भी सम्मिलत करती है। और इस प्रकार यह दृष्टिकोण में अधिक लोकतान्त्रिक थी। अरबी इतिहास परंपरा को वास्तव में युग के इतिहास के रूप में संदर्भित किया जा सकता है।

'वर्णनकर्ताओं की श्रृंखला' (*इसनाद*) अरबी इतिहास लेखन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी। पवित्र *कुरान* को अपने मौलिक रूप में कलमबंद करने के लिए इकट्ठी की गई परंपराओं की आलोचनात्मक रूप से छानबीन करने की आवश्यकता थी ताकि 'सबसे पवित्र सत्य' तक पहुँचा जा सके। इस सत्यापन की आवश्यकता और 'सत्य और एकमात्र सत्य' को प्रस्तुत करने की गहरी इच्छा के लिए *इसनाद* की परंपरा विकसित हुई और इसका विकास हुआ। इस संदर्भ में अल-बालादुरी (मृत्यु 892) की रचना फुतुह-उल बुलदान उत्कृष्टतम है। बालादुरी हर घटना का वर्णन, वर्णनकर्ताओं की श्रृंखला और प्रत्येक विश्वसनीय स्रोत के संदर्भ में करता है (सिद्दिकी 2014: 3)।

अल-मसूदी (मृत्यु 956-857) ने इतिहास के साथ भूगोल को जोड़ने का एक नया आयाम शुरू किया। मसूदी, स्वयं एक महान् यात्री थे, जिन्होंने भारत और श्रीलंका का भी भ्रमण किया था, उन्होंने अपनी रचनाओं को कलमबद्ध करते हुए अपनी यात्राओं के अनुभव और विभिन्न क्षेत्रों के भौगोलिक ज्ञान को उसमें जोड़ा। इस प्रकार भौगोलिक वातावरण को उन्होंने इतिहास की पृष्ठभूमि का एक महत्वपूर्ण घटक बना दिया जिसमें उन्होंने मानवीय ऐतिहासिक विकास के साथ भौगोलिक तथ्यों को सह-सम्बन्धित किया और इस प्रकार 'कारण और प्रभाव' का प्रयोग कर 'व्याख्या' को जोड़ा जो वैज्ञानिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण घटक है।

11वीं शताब्दी में अरबी इतिहास लेखन में एक और आयाम जुड़ गया। वह यह था कि दरबार से जुड़े अधिकारियों और विद्वानों ने अपने शासकों और उनसे संबंधित घटनाओं का इतिहास लिखना शुरू किया। इसने अरबी इतिहास लेखन के स्वर और रूप को काफी बदल दिया; इसने शासक अभिजात्य वर्ग के व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों, ईष्या, पसंद और नापंसद के घटक को जोड़ा और इतिहास लेखन का ध्यान आम लोगों की बजाय 'दरबार' की राजनीति और अभिजात्य वर्ग पर केन्द्रित होने लगा। यह अल-मुसाब्बिह (मृत्यु 1029; मिस्त्र का इतिहास) और अल-कुर्तुबी (मृत्यु 1076-77; अन्दुलेसिया (स्पेन) का इतिहास) के लेखनों में स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है। धीर-धीरे शाही संरक्षण के साथ, अरबी इतिहास का झुकाव भी अधिक से अधिक राजवंशीय इतिहास की तरफ हो गया जिसमें अपने संरक्षकों की उपलब्धियों की प्रशंसा की गई और जिसने एक और तत्व, अलंकारिकता, के लिए मार्गप्रशस्त किया। यह विशेष रूप से अल-उत्बी (मृत्यु 1035) के लेखन में स्पष्ट है विशेषकर उनकी *तारीख-ए यमीनी* में, जो ग़ज़ना के सुल्तान महमूद और सुबुक्तिगीन के बारे में वर्णन करती है। हालांकि अल-बरूनी, जो दरबार से भी जुड़े थे, उन्होंने इतिहास लेखन की पुरानी शास्त्रीय परंपरा का अनुसरण किया। अरब इतिहास लेखन के संदर्भ में इब्न खलदून (मृत्यु, 1404) की रचना *मुकद्दिमा* मानव समाज, मानव संबंधों (*इज़तिमा*) की गतिशीलता को कार्य-कारण संबन्ध के साथ जोड़ती है। वह शासकों/राजवंशों की ताकत के पीछे मुख्य कारक के रूप में कबीले की एकजुटता (*असबिया*) की भावना को उत्तरदायी मानता है।

फारसी इतिहास लेखन ने इतिहास के दायरे को संकुचित कर दिया और इसे उस युग के सामाजिक, धार्मिक इतिहास की तुलना में राजनैतिक इतिहास और शासकों और कुलीनों के जीवन के इर्द-गिर्द केन्द्रित कर दिया। इस प्रकार फारसी इतिहास 'राजवंशीय इतिहास' थे; 'राजाओं' और 'अभिजात्य वर्ग' के इतिहास। फारसी इतिहासकारों ने 'अपनी रचना का महत्व बढ़ाने के लिए'

शासकों को अपनी रचनाएँ समर्पित करना पंसद किया। मिन्हाज-ए सिराज जुज़जानी ने अपनी *तबकात-ए नासिरी* को नासिरूद्दीन महमूद को, ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपनी *तारीख-ए फिरोज़शाही* को फिरोजशाह तुगलक को समर्पित की थी। फारसी इतिहास में अधिकांशतः शिक्षित वर्ग, विद्वानों और सन्तों पर चर्चा का अभाव पाया जाता है और उनका उल्लेख आमतौर पर शासकों के संदर्भ में किया जाता है। मिन्हाज का काल महान् चिश्ती और सुहरावर्दी संतों (मुइनुद्दीन चिश्ती, बख्तियार काकी, हमीदुद्दीन नागौरी) की सूफ़ी गतिविधियों के कारण जीवंत था लेकिन वे काफी हद तक उसके वर्णन से गायब हैं। हालांकि बरनी का इतिहास भी काफी हद तक फारसी ऐतिहासिक परंपरा में आता है लेकिन उसके लेखन में एक सूक्ष्म बदलाव स्पष्ट है। वह विद्धानों और सूफियों का उल्लेख करता है, हालांकि कम परिमाण में। दरबार के जीवन के चित्रण में वह संगीतकार-नर्तकियों, नुसरत बीबी, मिहिर अफरोज़ का उल्लेख करता है। इसी प्रकार हालांकि वह निचले वर्ग में जन्म लेने वालों से घृणा करता था, पर इस प्रक्रिया में वह उनके बारे में बताता है जो सर्वोच्च स्थानों पर पहुँचे-लड़्ढा माली, बाबू नायक जुलाहा और मनका रसोइया। अबुल फज़ल ने अपने लेखन में अरबी और फारसी दोनों इतिहास लेखन की शैलियों को मौलिक रूप से संशोधित और संयोजित किया। बाद में, आमतौर पर सभी इतिहासकारों ने विद्वानों और साहित्यकारों और सूफियों को राजनैतिक वर्णनों के साथ शामिल करना शुरू कर दिया।

10वीं शताब्दी तक अरबी ऐतिहासिक परम्परा प्रमुख रही; फिरदौसी और बाद में शेख सादी के तहत् फारसी पुनर्जागरण ने धीर-धीरे इतिहास लेखन की अरबी परंपरा पर अधिपत्य जमा लिया। जल्द ही फारसी ने अरबी परंपरा पर कब्जा कर लिया और संचार का माध्यम बन गई और सुल्तानों, कुलीनों और साहित्यकारों की भाषा बन गई। भारत में फारसी ऐतिहासिक परंपरा, फारसी लेखन पर हावी थी। *चचनामा* जो मुहम्मद बिन कासिम के भारत (विशेषकर सिंध की विजय) पर केन्द्रित है, तथा अल-बरुनी की *किताब-उल हिंद* अरबी शैली में लिखे गए थे। हसन निज़ामी से जब फारसी में रचना करने (*ताज-उल मासिर*) करने के लिए कहा गया तो वह निराश हुए क्योंकि वह अरबी भाषा को लेखन की एकमात्र उचित भाषा मानते थे।

बोध प्रश्न-1

1) इतिहास लेखन की अरबी परंपरा की विशेषताएँ क्या थीं?

.....

.....

.....

2) इतिहास लेखन की फारसी परंपरा की विशेषताएँ क्या थीं?

.....

.....

.....

1.3 राजनैतिक वृत्तांतः दिल्ली सल्तनत

इस दौर की सभी समकालीन ऐतिहासिक रचनाओं पर चर्चा करना हमारे लिए मुश्किल होगा, इसलिए हम सल्तनत काल के मौलिक व्यक्तित्व, ज़ियाउद्दीन बरनी के साथ-साथ इस दौर के कुछ प्रतिनिधि इतिहासकारों के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे। ज्यादातर सल्तनत काल का लेखन फारसी में और फारसी परंपरा में लिखा गया था। इस तरह के लेखन में सबसे पहले रचित हसन निज़ामी की *ताज-उल मआसिर* और फ़ख-ए मुदब्बिर की *आदाब-उल हर्ब वा शुजात* थीं।

1.3.1 हसन निज़ामी

सद्रउद्दीन हसन निज़ामी की रचना (*ताज-उल मआसिर*) को पहला आधिकारिक इतिहास कहा जा सकता है। इसमें दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1191-92) से लेकर 1229 सी.ई. तक की समयावधि शामिल है। *फतहनामा* की रचना करने में उनकी दक्षता की बरनी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। बरनी विशेष रूप से उनके लखनौती के *फतहनामे* के कायल हैं, जिनके बारे में उनका यकीन था कि यह *दबीरों* (मुंशियों) के लिए प्रारूप बन गया। हसन पर अरबी परंपरा का गहरा प्रभाव था और वह

विशेष रूप से महान् ख्वारिज़्मियन विद्वान रशीद वतवत से प्रभावित थे। हसन का वृत्तांत आंलकारिक भाषा से भरपूर है। यहाँ तक कि अमीर खुसरो और अबुल फजल तक ने उनकी आंलकारिक भाषा का अनुकरण किया।

हसन एक विशिष्ट विद्वान परिवार से थे। निशापुर के मूल निवासी उनके पिता निज़ामी अरूज़ी समरकन्दी एक महान् विद्वान और ईरान की सबसे प्रसिद्ध हस्ती उमर खय्याम के दोस्त थे। हसन खुद अपनी विद्वत्ता के प्रति सचेत थे और उन्हें इस बात की हताशा थी कि उनकी विद्वत्ता को मान्यता नहीं दी गई थी, जो उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। मुहम्मद अली कूफी उनके आध्यात्मिक गुरु थे और उनके सुझाव पर ही वे निशापुर से ग़ज़ना और वहाँ से दिल्ली के लिए रवाना हुए। यह वह समय था जब ऐबक ने शिहाबुद्दीन ग़ौरी, मुईज़ुदीन मुहम्मद बिन साम की उपलब्धियों को कलमबद्ध करने के लिए विद्वानों को आमंत्रित किया था। अपने मित्र के आग्रह पर उन्होंने अपनी रचना लिखने का फैसला किया। हालांकि, ऐबक की अचानक मृत्यु और इल्तुतमिश द्वारा राजधानी के लाहौर से दिल्ली स्थानांतरण ने हसन पर और दबाव बढ़ा दिया। उन्होंने स्वयं को अपनी मातृभूमि से दूर महसूस किया; लाहौर ग़ज़ना के नजदीक था, वह विपरीत परिस्थितियों में ग़ज़ना के संरक्षण की आशा कर सकता था। इसके विपरीत दिल्ली ग़ज़ना से बहुत दूर थी और उसकी जड़ें 'भारतीय परंपरा' में ज्यादा गहराई से स्थापित थी। इस सबका हसन के लेखन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनका वृत्तांत हालांकि 1217 तक है, परन्तु इल्तुतमिश उनकी रचना का केन्द्र बिन्दु नहीं है। अतः इल्तुतमिश की प्रशासनिक उपलब्धियों, यहाँ तक कि *इक्ता* का भी, उनकी रचना में शायद ही कोई स्थान है। हालांकि उनमें ऐबक के लिए बहुत प्रंशसा थी जिनकी अप्रवासियों के प्रति उनकी उदारता की उन्होंने प्रशंसा की है। इक्तिदार हुसैन सिद्दिकी (2014: 52) का तर्क है कि हसन 'अपने नायक सुल्तान कुतबुद्दीन ऐबक के महान् व्यक्तित्व से प्रभावित थे ... इसके विपरीत, सुल्तान इल्तुतमिश के शासन काल का वर्णन जल्दबाजी में दरबार में पेश करने के उद्देश्य से और बदले में इनाम पाने के उद्देश्य से सकंलित किया प्रतीत होता है। इसमें शुरू के भाग के साहित्यिक सौंदर्य का अभाव है।'

उनका वर्णन काफी हद तक उनके संरक्षक ऐबक की सैन्य उपलब्धियों पर केन्द्रित है। हालांकि, 1197 से 1202 के बीच की कोई भी घटना हसन द्वारा दर्ज नहीं की गई है। इल्तुतमिश की प्रशासनिक उपलब्धियों को उनके द्वारा पूरी तरह से अनदेखा किया गया है। चंगेज़ खान के सिंधु तक आगमन और भारतीय राजनीति पर इसके प्रभाव का भी कोई ज़िक्र नहीं है। दिलचस्प बात यह है कि बख्तियार खलजी द्वारा बंगाल की विजय (नादिया पर कब्जा) और ना ही तिब्बत के खिलाफ उसके सैन्य अभियान हसन द्वारा दर्ज किए गए हैं। यह दर्शाता है कि शिहाबुद्दीन की दृष्टि में तीनों केन्द्र एक-दूसरे से स्वतंत्र थे और ऐबक को उनके भारतीय अधिकृत क्षेत्रों का एकमात्र प्रभारी नहीं बनाया गया था। इनाम पाने की उसकी इच्छा ने उसके द्वारा उन अप्रिय तथ्यों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया जो इल्तुतमिश को असहज स्थिति में डाल सकते थे। यह ऐबक की मृत्यु और इल्तुतमिश के उत्तराधिकार के बाद की अवधि के पूर्ण मौन में परिलक्षित होता है। यह भी प्रतीत होता है कि ऐबक की अचानक मृत्यु से एक रिक्तता आ गई थी। इसमें दिल्ली के कुलीनों द्वारा ऐबक के पुत्र आराम शाह को राजगद्दी पर बिठाने का भी कोई उल्लेख नहीं है और ना ही आराम शाह के खिलाफ *अमीर-दाद* की साज़िश का। मिन्हाज वर्णन करता हैं कि इस्माइल ने बदायूँ से इल्तुतमिश को गुप्त रूप से दिल्ली बुलाया था।

बहरहाल, हसन उन रिक्त स्थानों को भरता है जहाँ मिन्हाज चुप है। मिन्हाज 1193 में हसन द्वारा वर्णित ऐबक के ग़ज़ना वापिस बुलाए जाने की घटना पर चुप है। उसके द्वारा हाँसी के पास जाटवान की ऐबक की लड़ाई का कोई उल्लेख नहीं है। ऐबक की सैन्य सफलताओं को मिन्हाज के कई वर्णनों में आसान विजय के रूप में दर्शाया गया है। हालांकि हसन का वृत्तांत राजपूतों द्वारा कड़े प्रतिरोध का संकेत देता है। हसन वर्णन करता है कि अनहिलवाड़ा के युद्ध में भीमदेव द्वितीय ने तुर्कों को लगभग हरा ही दिया था। 1196 में अजमेर में ऐबक की प्रारंभिक हार और ग़ज़ना से अतिरिक्त सैन्य बल भेजे जाने का वर्णन मिन्हाज ने पूरी तरह छोड़ दिया। हसन दिल्ली, मेरठ, कोल और कालिंजर के किलों की मजबूती की प्रंशसा भी करता है। ग्वालियर के किले को हसन ने 'हिंद के किलों के हार में मोती के रूप में वर्णित किया है'। हसन द्वारा प्रस्तुत किये गये कुछ आधिकारिक दस्तावेज बहुत महत्व के हैं, जो गर्वनर की शक्तियों और कार्यों पर विशिष्ट प्रकाश डालते हैं। इस

संदर्भ में मुहम्मद बिन साम के द्वारा कोल के गर्वनर को जारी किया गया एक परवाना (1193-94) और शहज़ादा नसीरूद्दीन महमूद की लाहौर के *वली* (गवर्नर) की नियुक्ति के बारे में इल्तुतमिश के *फरमान* (1217) का उल्लेख किया जा सकता है।

इस अवधि के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर शायद ही कोई ध्यान केन्द्रित किया गया है। हालांकि, हमें इस समय के हथियारों, बहुमूल्य पत्थरों, रत्नों, फूलों, संगीत वाद्ययन्त्रों, जड़ी-बूटियों और पक्षियों और जानवरों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। हसन द्वारा लगभग अठाईस प्रकार के हथियार और शस्त्रागर दर्ज किये गये हैं। इसके अलावा वह *कटार-ए हिन्दी* (तलवार), *शिल-ए हिन्दी* (बर्छे) और *भाला-ए* हिन्दी का हवाला देता है। उनके व्यापारियों के कारवाँ और दुनियाँ भर में उनके द्वारा लाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की वस्तुओं (चीनी, रेशम, बदख्शां के माणिक, अरबी घोड़े, मोरक्को का चमड़ा, चीनी दर्पण, और अनातोलिया के ज़री वाले वस्त्र) का वृत्तांत विस्तृत व्यापारिक गतिविधियों का सूचक है।

इस प्रकार हसन निज़ामी की रचना विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व की है। हालांकि, 'उसमें रूपकों, उपमाओं और अलंकारिक उपकरणों की भरमार है, लेकिन जब यह सभी साहित्यिक साजो-सामान हटा दिया जाता है, तो *ताज-उल* मआसिर को अर्थ और सार तत्व के किसी भी नुकसान के बिना अपने वर्तमान आकार से एक चौथाई से भी कम किया जा सकता है' (निज़ामी 1982: 70)।

1.3.2 मिन्हाज-उस सिराज जुज़जानी

मिन्हाज-उस सिराज जुज़जानी की *तबकात-ए नासिरी* ऐसी कृति है जिसको रोज़ेन्थाल 'राजवंशीय' इतिहास की श्रेणी में रखता है। मिन्हाज ने इसे सुल्तान नसीरूद्दीन महमूद को समर्पित की है। इसे *तबकात* शैली में लिखा गया है। *तबका* का शाब्दिक अर्थ है 'परत'; इसे अक्सर पीढ़ी/वर्ग/जाति/राजनैतिक व्यवस्था को परिभाषित करने के अर्थ में उपयोग किया जाता है। मिन्हाज ने इसका उपयोग राजवंशों और व्यक्तित्वों को समझाने के लिए किया था। इस पुस्तक को तेइस *तबकों* में विभाजित किया गया है। प्रत्येक तबके को आगे अध्यायों और उप-भागों में विभाजित किया गया है।

मिन्हाज के परिवार को धार्मिक विद्वता और धर्म-निष्ठा में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी और उनके बगदाद के खलीफा के साथ संबंध थे। मिन्हाज के पिता सिराजुद्दीन को ख्वारिज़्मियन शासक ने खलीफा के दरबार में दूत के रूप में भेजा था, हालांकि लुटेरों द्वारा उनकी रास्ते में हत्या कर दी गई थी। उनके पूर्वजों के ग़ौर और ग़ज़ना के शासक परिवारों के साथ भी घनिष्ट वैवाहिक संबंध थे। मिन्हाज के परदादा इमाम अब्दुल खालिक ग़ज़ना के सुल्तान इब्राहिम (1059-1099) के दामाद थे। उनके पिता ग़ौरी की सेना में काज़ी थे। फिरूज कुह में जन्मा मिन्हाज शहज़ादी माह मलिक, जो गियासुद्दीन मुहम्मद बिन साम को बेटी थी और मिन्हाज की माँ की पालक-बहन और सहपाठी थी, के *हरम* में पल-बढ़े। माह मलिक, जो एक शिक्षित महिला थीं, खुद एक *हाफिज़* थीं। वह किताबें पसंद करती थीं और उसके पास एक अच्छी लाइब्रेरी थी। मिन्हाज उनका प्रिय था और उसकी लाइब्रेरी तक बिना रोक-टोक के पहुंच थी। मिन्हाज ने स्वयं 1220 के दशक में चार वर्षों के लंबे समय तक मंगोलों के खिलाफ अभियानों में भाग लिया था। मिन्हाज 1227 में ग़ज़नी और बानियान के रास्ते भारत के लिए खाना हुआ और नाव में उच्छ तक पहुंचा। कुबाचा उसके शैक्षणिक और बौद्धिक कौशल से प्रभावित हुआ और उन्हें उच्छ में फिरोज़ी मदरसा का प्रिंसिपल बनाया और उन्हें अपने बेटे की सेनाओं का *काजी-ए लश्कर* नियुक्त किया। जब इल्तुतामिश ने 1227 में मुल्तान पर कब्जा किया तो वह मिन्हाज को साथ में दिल्ली ले आया। दिल्ली में उन्हें इमाम, *काज़ी* और *खतीब* बनाया गया। 1231 में वह ग्वालियर की घेराबन्दी के दौरान इल्तुतामिश के साथ गया। विजय के बाद उसे ग्वालियर का काज़ी, खतीब और इमाम बनाया गया। 1237 में उसने नसीरिया मदरसे के प्रिंसिपल का पदभार संभाला। हालांकि इल्तुतमिश की मृत्यु के बाद वह दरबार की सक्रिय राजनीति में जुड़ गया जिसने उसकी किस्मत और प्रतिष्ठा को प्रभावित किया। रज़िया के शासन काल के दौरान उसे ग्वालियर के कार्यभार से हटा दिया गया। 1241 में उसे मुइज़ुद्दीन बहराम द्वारा दिल्ली का प्रमुख *काज़ी* बनाया गया। वह राजनीति में इतना अधिक सक्रिय था कि तत्कालीन वज़ीर मुइज़ुद्दीन बहराम ने उस पर जामा मस्जिद में हमला करवाया लेकिन इस हमले में वह बिना आहत हुए बच निकला। इमामुद्दीन रेहान की शक्ति बढ़ने के कारण उसे फिर से नौकरी छोड़नी पड़ी। लेकिन 1255 में बलबन के सत्ता में आने से उन्होंने दिल्ली के *काजी-उल कुज़्ज़ात* और दिल्ली के

काजी का पद फिर से प्राप्त हो गया। जिस पर वह अपने जीवन के अंत तक बना रहा। उसके द्वारा शुक्रवार को दिए जाने वाले उपदेश इतने लोकाप्रिय थे कि शेख निज़ामुद्दीन औलिया भी अपनी युवावस्था के दिनों के दौरान हर शुक्रवार को उसे सुनने वहाँ जाते थे।

किस्मत के इन उतार-चढ़ाव और राजनीति में उनकी सक्रिय भागीदारी ने मिन्हाज के लेखन को प्रभावित किया। केवल एक बार उन्होंने खुले तौर पर सुल्तान मुइज़ुद्दीन बहराम शाह का पक्ष लिया और उन्हें दो साल के लिए निर्वासन का सामना करना पड़ा। इससे सबक सीख तत्पश्चात् वह कभी भी एक गुट या दूसरे के पक्ष में खुले तौर पर शामिल नहीं हुआ।

तबकात की शुरुआत आदम से पैगम्बर और पवित्र खलीफाओं की चर्चा (एक से चार *तबका*) से होती है। बाद में प्रत्येक वंश के लिए कि अलग अध्याय (*तबका*) समर्पित है। पूव-इस्लामिक ईरान और यमन के इतिहास की चर्चा 5.6 तबका में की गई है। सातवें तबका से मिन्हाज ईरान और मध्य एशिया के शासक राजवशों के इतिहास पर बातचीत करता है; आठ से दस तबके में सफाविद, सामानिद और डेलामाइट्स (बुवाहिद) पर विचार-विमर्श करता है; तबका 16 से 23 सर्वाधिक विस्तृत हैं और तबका 16 से 19 ग़ौर में शंसबानी राजवंश के बारे में है। नसीरूद्दीन महमूद के शासन के बाद से यह एक वार्षिक इतिवृत्त में बदल जाता है। चंगेज़ खां और उसके उत्तराधिकारियों के अधीन मंगोल सत्ता के उदय पर विचार-विमर्श के साथ चर्चा (अंतिम *तबका*) समाप्त होती है। हालांकि तबकात अत्यधिक विस्तृत और व्यापक रचना है, लेकिन इसकी चर्चा काफी हद तक राजनैतिक घटनाओं के विवरण पर केन्द्रित है। यहाँ हम मुख्यतः ग़ौर/ग़ज़ना, दिल्ली सुल्तानों और मंगोलों पर उनके लेखन पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं।

इस्लाम के अपने प्रारंभिक इतिहास के लिए उन्होंने चौदह पुस्तकों की सहायता ली। इनमें कुछ *तारीख-ए बैहाकी*, *तारीख-ए यमीनी*, आदि हैं। दिल्ली सल्तनत के लिए वह स्वयं अधिकांश घटनाओं का चश्मदीद गवाह और भागीदार था। 'दिल्ली सुल्तानों का उनका विवरण विस्तृत है, लेकिन ज्ञानवर्धक नहीं। शायद राजनैतिक विचार, कुलीनों के बदलते रवैयों और वफादारियों ने उन्हें इस समय के सुल्तानों और कुलीनों के विवरण देने में उन्हें काफी सर्तक कर दिया' (निज़ामी 1982: 79)। लेकिन उनका मंगोलों का वृत्तांत, जो 1220 के दशक में मंगोलों से तुलक मे निपटते हुए आंशिक रूप से उनकी व्यक्तिगत टिप्पिणयों पर आधारित था और बाद के विवरणों के लिए वे दिल्ली आने वाले यात्रियों और व्यापारियों पर निर्भर थे जैसे रशीदुद्दीन हकीम बल्खी और सैयद अशरफुद्दीन समरकंदी जो 1258 में व्यापार के लिए दिल्ली आए थे।

बख्तियार खलजी के तिब्बत के विनाशकारी अभियान पर मिन्हाज की सादृश्यता दिलचस्प है। उनका तर्क है कि बख्तियार लांघन नस्ल के घोड़ों की आपूर्ति लाइन को नियंत्रित करना चाहता था। इसी प्रकार, मिन्हाज का लेखन अप्रत्यक्ष रूप से दर्शाता है कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों से छुटकारा पाने में इल्तुतमिश के विश्वासघात को पसंद नहीं करता था। वह स्पष्ट रूप से इल्तुतमिश की तुलना में यल्दूज़ और कुबाचा को अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर गुणों के शासकों के रूप में रेखांकित करता है। दिल्ली सुल्तानों के कुलीनों पर उनका *तबका* (22) इल्तुतमिश के 25 कुलीनों से सम्बन्धित है। हालांकि बरनी उन्हें 'चालीस के समूह' (*तुर्कान-ए चिहिलगानी*) के रूप में संदर्भित करते हैं। मिन्हाज एक अमीर के जीवन की जीवंत तस्वीर पेश करते हैं – उनकी प्रतिभा, सैन्य कौशल, उनकी नस्लीय पृष्ठभूमि, 'एक गुलाम' के रूप में प्रशिक्षण, तुर्की कुलीन, व्यक्तिगत साज़िशें, उनकी संपत्ति, इक्ता-धारकों के रूप में उनके कार्य, उनके कर्त्तव्य, आदि। हालांकि, राजनैतिक कारणों से कुछ महत्वपूर्ण कुलीन जैसे कुतबुद्दीन हसन ग़ौरी (बलबन के साथ उसके तनावपूर्ण सम्बन्धों के कारण) उनके विवरण से गायब हैं। मिन्हाज ने पूरी तरह से स्वयं को तुर्की कुलीन वर्ग के साथ पहचाना और उन्होंने गैर-तुर्की कुलीनों पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया (मिन्हाज को अपनी दुर्गति इमादुद्दीन रेहान के हाथों भुगतनी पड़ी थी)। इस प्रकार, मिन्हाज के वृत्तांत में सल्तनत कालीन राजनैतिक व्यवस्था में गैर-तुर्की कुलीनों की भूमिका से सम्बन्धित जानकारी का अभाव है, विशेष रूप से उसमें शायद ही खलजी कुलीन वर्ग के उदय की पृष्ठभूमि का अंदाजा मिलता है।

अपने राजनैतिक सम्बन्धों के कारण उन्होंने अक्सर कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं को अनदेखा किया। उनके लिए रेहान का उभरना मात्र आकस्मिक था। उसने अल्तूनिया/याकूत को प्रशासन में उच्च पदों पर लाकर पुराने तुर्की कुलीनों की सत्ता को तोड़ने का प्रयास करने के लिए रज़िया की

आलोचना की। लेकिन दूसरी तरफ वह रज़िया के सबसे अच्छा विकल्प होने और इल्तुतमिश के बेटों की अयोग्यता के संकेत देता है, 'मेरे बेटे युवावस्था के सुख में तल्लीन हैं और उनमें से किसी के पास देश के मामलों के प्रबन्धन की क्षमता नहीं है ... मेरी मृत्यु के बाद यह देखा जाएगा कि *उनमें से एक को भी* उसके, मेरी बेटी के मुकाबले, उत्तराधिकारी के रूप में अधिक योग्य नहीं पाया जाएगा' (निज़ामी 1982 :84)। नसीरूद्दीन महमूद से सता हथियाने के लिए बलबन के शर्मनाक तरीके एक ज्ञात बहुत तथ्य है। नसीरूद्दीन महमूद से सत्ता हथियाने के लिए बलबन के शर्मनाक तरीके एक ज्ञात तथ्य है। मिन्हाज के लिए यह दुविधा थी कि अगर वह नसीरूद्दीन का समर्थन करता तो यह बलबल के रोष का कारण बनता। इसलिए उसने नसीरूद्दीन को 'दुनियादारी से दूर' राजनैतिक शक्ति में कम दिलचस्पी लेने वाले के रूप में पेश किया। इस प्रकार उसने बलबन द्वारा 'सत्ता हथियाने' को 'समय की आवश्यकता' के रूप में प्रस्तुत किया। मिन्हाज ने कुतबुद्दीन हसन ग़ौरी की निर्मम हत्या को भी छुपाया, जो *तुर्कान-ए चिहिलगानी* का एक सदस्य था, ताकि बलबन के रोष से बच जाए। बहरहाल दूसरी जगह, वह उसकी हत्या को शहादत कहता है, इस प्रकार चालाकी से संकेत करके बलबन के कृत्य को कदाचित न्यायसंगत माना। एक भौतिकवादी के रूप में नूर तुर्क का मिन्हाज द्वारा चित्रण भी सच्चाई से बहुत दूर है। क्योंकि शेख निज़ामुद्दीन औलिया उन्हें 'बारिश के पानी से भी शुद्ध' कहते हैं।

इसी प्रकार मिन्हाज द्वारा तुर्कों के प्रारंभिक अभियानों के विवरण हालांकि विस्तृत हैं परन्तु भारतीय प्रतिरोध के परिप्रेक्ष्य और तीव्रता की जानकारी नहीं देते। उसने तुर्कों की विजय के प्रभाव और बदलते प्रशासनिक ढाँचे (यहाँ तक कि *इक्ता* के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान नहीं करता है) के विवरण और उन बदलावों के प्रति जनता की प्रतिक्रिया को भी पूरी तरह नजरअंदाज़ किया है। यहाँ तक कि शुरुआती तुर्क शासनकाल भारत में सूफ़ीवाद के विकास के लिए सबसे जीवंत युग था और इसमें शेख मुइनुद्दीन चिश्ती, बख्तियार काकी, शेख फरीदुद्दीन गंज-ए शकर, बहाउद्दीन ज़करिया और हमीदुद्दीन नागौरी जैसे महान् सूफ़ी संत इस समय रहे लेकिन वह किसी के बारे में बात नहीं करता।

लेकिन यह सब मिन्हाज के वृत्तांत के महत्व को कम नहीं करता है। मिन्हाज स्वयं एक प्रख्यात विद्वान थे। यहाँ तक कि निज़ामुद्दीन औलिया भी उनके साप्ताहिक प्रवचनों को सुनने के लिए जाते थे। शम्सी और कुतबी *मलिकों* के जीवन के बारे में उनका वर्णन, जिनके साथ वे स्वयं निकट से जुड़े हुए थे, काफी व्यापक है। लेकिन मिन्हाज का बिना पक्षपात के मंगोलों का वर्णन सर्वोत्तम है। चंगेज़ खां का चित्रण अत्यधिक जानकारीपूर्ण है – मिन्हाज द्वारा उसकी आस्था, उसकी क्रूरता, उसकी दयालुता, न्याय-संबंधी गुणों और अनुशासन का विस्तृत वर्णन किया गया है।

1.3.3 अमीर खुसरो

आधुनिक इतिहासकार अक्सर तर्क देते हैं कि क्या अमीर खुसरो का एक इतिहासकार की श्रेणी में रखा जा सकता है? मोहम्मद हबीब ने 1927 में लिखते हुए इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में खुसरो की पाँच *मसनवियों* (काव्य रचनाएँ) के महत्व पर प्रकाश डाला है। वह तर्क देते हैं कि खुसरो की *खज़ाएन-उल फुतुह* अलाउदीन खलजी के शासन काल की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है। उनकी दलील है कि संभवतः अलाउदीन के दक्खन अभियानों के बारे में उनके अपने विवरण से पहले खुसरो ने केवल संक्षेप में आधिकारिक इतिहासकार कबीरूद्दीन द्वारा लिखा दोहराया होगा (उनकी रचना भावी पीढ़ियों के लिए प्राप्य नहीं रही)। कबीरूद्दीन के बाद का खुसरो ने अलाउद्दीन के दक्खन अभियानों का सजीव वर्णन पेश किया है। हालांकि पीटर हार्डी (1966) के अनुसार, 'अमीर खुसरो ... अतीत का सार देने का प्रयास नहीं करते हैं और अतीत के बारे में उनके वर्णन में विषय-वस्तु की एकता और कालक्रम का अभाव है'। इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी (2014: 164-165) के अनुसार हालांकि 'अमीर खुसरो ने अतीत को पूरी तरह से दस्तावेज के रूप में कलमबद्ध करने का लक्ष्य नहीं रखा था ... उन्होंने सामाजिक और राजनैतिक महत्व की घटनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया ... उन्होंने नई विधाओं की खोज करके हिंद-फारसी इतिहासलेखन का दायरा बढ़ाया'। अमीर खुसरो ने अपने इतिहासलेखन में 'युद्धों, विजय और दरबारी साजिशों' से हटकर उस काल के 'सामाजिक सांस्कृतिक जीवन' पर ध्यान केन्द्रित किया जो प्रारंभिक फारसी लेखकों के लेखन में काफी हद तक अनुपस्थित है।

अमीर खुसरो (1253.1325) एक कवि-इतिहासकार थे। उनकी शैली शब्दबहुल (verbose) और

काव्यात्मक कल्पना और अलंकारों (rhetorics) से भरपूर है। अक्सर उनके लेखन में कालानुक्रम का अभाव है। खुसरो एक बहुप्रज लेखक थे। उन्होंने विशाल परिमाण में काव्यात्मक साहित्य लिखा जिसमें उनका खमसा अनूठी कृति है। अपनी युवावस्था में बरनी को उनसे मिलने का सौभाग्य मिला। वह प्रशंसा करते हैं कि उनकी रचनाएँ इतनी बड़ी संख्या में हैं कि उनका एक स्वयं का पुस्तकालय बन सकता है। वह उनकी एक धर्मनिष्ठ सूफ़ी के रूप में भी प्रशंसा करते हैं जो समा (सूफ़ी संगीत समारोह) के शौकीन और शेख निज़ामुद्दीन औलिया के सर्वाधिक प्रिय शिष्यों (*मुरीद*) में से एक थे। अमीर हसन सिज्जी उन्हें सादी-ए हिन्दुस्तान कहते हैं। खुसरों की प्रतिष्ठा ऐसी थी कि हिरात के शासक बे सुंघर मिर्ज़ा ने उनके *खमसा* को निज़ामी के *खमसा* से बेहतर माना।

खुसरो की पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में बहुत कुछ ज्ञात नहीं है। खुसरो के पिता सैफुद्दीन लाचिन मध्य एशिया के एक तुर्की गुलाम थे और उनके पिता और मामा-नाना इमाद-उल मुल्क इल्तुतमिश के निम्न श्रेणी के गुलाम अमीर थे। जल्द ही इमाद-उल मुल्क बलबन के विश्वासपात्र अमीर बन गए (उन्होंने *आरिज-ए शिकरा* {शाहीबाज़ों के काय-प्रभारी} का पद संभाला)। जब वह सिर्फ सात साल (1260-61) के थे तो उनके पिता की मृत्यु हो गई। इसलिए उनके मामा-नाना इमाद-उल मुल्क ने दिल्ली में उनका पालन-पोषण किया। जब 1273 में इमाद-उल मुल्क की मृत्यु हो गई तो खुसरो बलबन के भतीजे किशलू खान (मलिक छज्जु) से जुड़ गये। हालांकि खुसरो की प्रतिभा खलजियों के तहत विशिष्ट रूप से निखरी। जलालुद्दीन खलजी ने उन्हें *नादिम-ए खास* (मुख्य दरबारी) बनाया।

यहाँ हमारा उद्देश्य खुसरों की एक कवि के रूप में नहीं बल्कि एक इतिहासकार के रूप में चर्चा करना है। इसलिए, हम बड़े पैमाने पर खुसरो के *किरान-उस सादैन* (*मसनवी*), *देवल रानी खिज़्र खान* (*आशिका; मसनवी*), *नुह सिपहर*, *इजाज-ए खुसरवी* (*मसनवी*), *खज़ाएन-उल फुतुह* या *तारीख-ए अलाई* और *तुगलकनामा* (*मसनवी*) की चर्चा करेंगे। लिखने के लिए उन्होंने जो भी ऐतिहासिक विषय उठाया वह उनकी पसंद का नहीं था बल्कि उसे एक विशेष विषय पर तत्कालीन सुल्तान द्वारा लिखने के लिए कहा गया था। उनके द्वारा सुल्तान कैकुबाद के अनुरोध पर *किरान*-उस सादैन की रचना की गई थी। यह अक्सर खुसरो को तत्कालीन सुल्तान के बारे में असहज तथ्यों से बचने के लिए मजबूर करता था। उनकी *खज़ाएन-उल फुतुह* अलाउद्दीन खलजी के द्वारा अपने चाचा और ससुर जलालुद्दीन खलजी की नृशंस हत्या की बात नहीं करती। उनकी *किरान-उस* सादैन (*मसनवी*) सुल्तान कैकूबाद (पुत्र) और बुग़रा खान (पिता) के बीच मुलाकात और उनके दिल्ली से अवध तक प्रयाण का वर्णन है। *सादैन* दिल्ली के जीवंत सांस्कृतिक जीवन पर विशिष्ट रोशनी डालती है जो खुसरो का मानना है कि महत्व की दृष्टि से बुखारा और ग़ज़ना से बढ़कर थी। यह दिल्ली की विभिन्न भवन संरचनाओं, दरबारी जीवन और आनंदमयी उत्सव-समारोहों के बारे में रोचक अर्न्तदृष्टि प्रदान करती है।

खुसरो की *मिफ्ताह-उल फुतूह* (*मसनवी*) जलालुद्दीन खलजी के पदारोहण और उनकी सैन्य उपलब्धियों से सम्बन्धित है। खुसरो जलालुद्दीन की एक सेनापति और एक इंसान के रूप में भूरि-भूरि प्रशंसा करता है और जिसे विद्वानों की संगति पसंद है। वह मंगोलों (ग़ज़ना) और कुरमान और अफगानों (साल्ट रेंज) के खिलाफ एक सफल योद्धा के रूप में जलाल की शुरुआती जीवन यात्रा पर प्रकाश डालता है। वह सुल्तान की तुर्की कुलीनों के खिलाफ चार प्रमुख संघर्षों – एतमार (सुर्खा) और एतमार (कच्छन), मलिक छज्जू, कड़ा का गर्वनर और रणथम्भौर के खिलाफ संघर्ष पर भी चर्चा करता है। खुसरो न केवल रणथम्भौर की घेराबन्दी की चर्चा करता है, जिसमें वह खुद भी भागीदार था, बल्कि उस क्षेत्र की स्थलाकृति का भी सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है जिससे वह अत्यधिक आकृष्ट हुआ था, विशेष रूप से झाइन शहर, उसके मरूस्थल और नदियों से।

खुसरो का लेखन अलाउद्दीन खलजी के शासन काल में बुलंदी को प्राप्त करता है। उन्होंने एक नई शैली यानि गद्य में लिखना शुरू किया। *खज़ाएन-उल फुतूह* या *तारीख-ए अलाइ*, *देवल रानी खिज़्र खान (आशिका)*, और *नुह सिपहर* उनकी रचनात्मक प्रतिभा को दर्शाते हैं।

खज़ाएन-उल फुतूह या *तारीख-ए अलाई* मुख्यतः अलाउद्दीन के दक्खन अभियानों से सम्बन्धित है; सुल्तान बनने से पूर्व 1295 में देवगीर की जीत से लेकर 1312 तक। हालांकि दक्खन विजय विवरण से पहले अलाउद्दीन की भवन निर्माण गतिविधियों (सीरी), मरम्मत कार्यों (जामा मस्जिद और

हौज़-ए सुल्तानी), उनके मूल्य नियंत्रण के उपाय, *दार-उल अद्ल*, एक कपड़ा बाजार, की स्थापना, शराबबंदी पर उद्घोषणा, वेश्यावृत्ति पर प्रतिबन्ध, व्यापक शान्ति और यात्रियों के लिए सड़कों पर सुरक्षा, आदि के बारे में बहुत संक्षिप्त विवरण है। वह अलाउद्दीन के मूल्य नियन्त्रण उपायों को एक 'जन-कल्याणकारी' कदम कहता है, जबकि उनके विपरीत बरनी इसे उनकी मंगोल हमलों से निपटने के लिए अपनी सेना को मजबूत करने के प्रयास के रूप में चर्चा करता है।

एजाज-ए खुसरवी मुख्य रूप से पत्रों (epistle) और दस्तावेज़ों का एक संग्रह है (विस्तृत विवरण के लिए **भाग 1.5** देखें)। इसमें अलाउद्दीन की शक्ति को बुलंदी पर दर्शाया गया है और यह दिल्ली के सांस्कृतिक जीवन की जीवंतता, अलाउद्दीन की सेना की ताकत, सघन आबादी वाले समृद्ध और जीवंत कस्बे और शहरों का चित्रण करता है। लेकिन *एजाज-ए खुसरवी* में जो लक्ष्य सामने आता है वह है खुसरो के द्वारा प्रशासन के आदर्शों को सामने लाने की कोशिश।

देवल रानी खिज़्र खान (*आशिकी*) देवल रानी और अलाउद्दीन के पुत्र खिज़्र खान (1315) की एक त्रासदीपूर्ण प्रेम कहानी है। *नुह सिपहर* मुख्यतः मुबारक खलजी के दक्खन अभियानों से सम्बन्धित है। यह भारत और इसके निवासियों की प्रशंसा से परिपूर्ण है। यह उस क्षेत्र में बोली जाने वाली विविध बोलियों पर भी चर्चा करती है। दोनों *मसनवियों* में दरबार के अनुष्ठानों और समारोहों, शाही-जन्म-समारोहों और शाही विवाहों की जीवंतता पर प्रकाश डाला गया है। विशेष रूप से दिलचस्प हैं *देवल रानी खिज़्र खान* में खिज़्र खान की शादी की रस्मों का विस्तृत वर्णन और *नुह सिपहर* में मुबारक खलजी की देवगीर सफलता के बाद वापसी पर दिल्ली में विजय समारोह और शाहज़ादा मुहम्मद के जन्म समारोह का उल्लेख (1318)।

अमीर खुसरो का *तुगलकनामा* ग़ियासुद्दीन तुगलक की विजयों की प्रशंसा में रचित है। केवल *तुगलकनामा* से ही हमें तुगलक वंश के संस्थापक ग़ाज़ी मलिक की प्रारंभिक जीवन-यात्रा का विवरण प्राप्त होता हैः खुसरो उल्लेख करता है कि ग़ाज़ी मलिक अपने शुरुआती जीवन में अपने आपको *मर्द-ए आवारा* कहकर संबोधित करते थे। उन्हें जलालुद्दीन खलजी ने अपने मातहत रखा और बाद में वे अलाउद्दीन खलजी के भाई उलुग खान से जुड़ गये। रणथम्भौर की घेराबन्दी के दौरान अलाउद्दीन उससे विशेष रूप से प्रभावित हुआ।

अमीर खुसरो का वर्णन भौगोलिक विवरणों में विशिष्ट हैः दीपालपुर से दिल्ली के मार्गों के वर्णन (*तुगलकनामा*) में भौगोलिक परिवेश, नदियों, पहाड़, स्थानों के नाम, प्राकृतिक सुन्दरता, वनों, आदि का सेना के मार्च के विभिन्न चरणों में सजीवता से वर्णन किया गया है। दिल्ली से नर्मदा और विन्ध्य पर्वत माला से होते हुए दक्खन का वर्णन *खज़ाएन-उल फुतूह* में और दिल्ली से अवध का वर्णन (*किरान-उस सादैन*) में किया गया। दिल्ली के लिए उनकी अतीत की घटनाओं की यादें चिरस्थायी थी। जब वह मुल्तान में था, एक ऐसा शहर जिसे वह कभी पसंद नहीं करता था, वह अक्सर दिल्ली की जीवंतता, रूबाब और ऊद की गूंज को याद करता है। यद्यपि वह फिरक़ा नामा में अवध़ की, उसकी जलवायु, वनस्पतियों और जीव जन्तुओं, उसके आमों, सरयू/घाघरा की सुन्दरता, उसके विनम्र निवासियों की प्रशंसा करता है लेकिन फिर भी दिल्ली की यादें उसे परेशान करती हैं। वह नर्मदा और उसके आसपास के प्राकृतिक सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। हालांकि, सभी शहरों में वह देवगीर को पसंद करता था। उलुग खान (भविष्य के मुहम्मद बिन तुगलक) के साथ जब वह वहाँ गया तो उसके स्तुति गान में उसने एक कसीदा *सहीफत-उल औसाफ* लिखा। वह अपने देश (भारत) का बहुत बड़ा प्रशंसक थाः 'मैने दो कारणों से भारत की प्रशंसा की है पहला भारत मेरी जन्म-भूमि है और हमारा देश है ... इसकी जलवायु खुरासान से बेहतर है ... यहाँ के ब्राह्मण अरस्तु की तरह शिक्षित हैं'।

1.3.4 ज़ियाउद्दीन बरनी

ज़ियाउद्दीन बरनी एक सफल लेखक थे। उनकी रचनाएँ उनकी गहन विद्वत्ता को दर्शाती हैं। उनकी प्राथमिक रचनाएँ हैः *तारीख-ए फिरोज़शाही और फतवा-ए जहाँदारी* (1335/1337; संशोधित) और *सहीफा-ए नात-ए मुहम्मदी*।

बरनी का बाजार मूल्यों संबंधी विवरण अलाउद्दीन के मूल्य नियन्त्रण उपायों पर बहुमूल्य प्रकाश डालता है। बरनी अलाउद्दीन की निर्माण गतिविधियों पर भी रोचक रोशनी डालता है – सीरी की

दीवार की किलेबन्दी, जामा मस्जिद, कई शहरों और कस्बों, हौज़ खास, आदि पर। बरनी अलाउद्दीन द्वारा सजा के मामलों में *शरिया* के प्रति उपेक्षा दिखाने के लिए अपनी स्पष्ट नापसंदगी दिखाता है, हालांकि वह सामान्य रूप से अलाउद्दीन के तहत सल्तनत की प्रगति की प्रशंसा करता है, विशेष रूप से दिल्ली और इसके बाजारों, व्यापार और कारीगरों की। बरनी का अफगानपुरा की त्रासदी का वर्णन महत्वपूर्ण है। जहाँ मुहम्मद तुगलक को सामान्य रूप से अपने पिता की मृत्यु के लिए और उसके खिलाफ साज़िश रचने के लिए जिम्मेदार माना जाता था, वहीं बरनी उसकी बेगुनाही पर जोर देता है और इसे एक आकस्मिक मृत्यु बताता है। उसने मुहम्मद बिन तुगलक के अधीन 17 वर्षों तक *नदीम* (सलाहकार/दरबारी) के रूप में कार्य किया। वह अपने संरक्षक की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है और उसे '*सुल्तान-ए सईद*' (पवित्र शासक) और एक *शहीद* बताता है। बरनी हमें सूचित करता है कि उन्होंने आध्यात्मिक और लौकिक शक्तियों (पैगंबर के खलीफा और सुल्तान की) को अपने में आत्मसात करने का प्रयास किया। वह उसकी सैन्य नेतृत्व में प्रतिभा, शिक्षा और उदारता के लिए प्रशंसा करता है। बरनी उसकी महान् साहित्यक गतिविधियों, तर्क-संगत विज्ञानों (*इल्म-ए माकूल*) में उसकी अभिरुचि और दार्शनिकों और तर्कवादियों के प्रति उसके अनुराग और उसकी पारम्परिक विज्ञान (*मनकूल*), विशेष रूप से उबैद शायर (कवि) और साद मन्तकी (तर्कशास्त्री) के प्रभाव में की अवहेलना पर भी जोर देता है। बरनी बताता है कि मुहम्मद तुगलक तर्क का विशेष समर्थक था। अतः वह पवित्र और धार्मिक मानसिकता वाले रूढ़िवादी मुसलमानों, उलमा, *मशायखों* और *सैय्यदों* की हत्या करने से भी नहीं हिचकिचाता था, फिर भी वह पाँच वक्त की नमाज़ अदा करने वाला एक धर्मनिष्ठ मुसलमान था। मुहम्मद बिन तुगलक के व्यक्तित्व को समझने के लिए उसकी नीतियों की विफलता के बारे में बरनी की टिप्पणी भी बहुत महत्वपूर्ण है। उसका कहना है कि उसकी योजना की विफलताओं का कारण उसके द्वारा इस्लाम में विश्वास की कमी नहीं था, बल्कि यह इसलिए हुआ क्योंकि लोग उसकी प्रगतिशील नीतियों के कार्यान्वयन में सहयोग करने को तैयार नहीं थे। वह उसे 'इस्लाम के बौद्धिक अनुयायी के रूप में चित्रित करता है जो अपने द्वारा बनाये गये नये कानूनों और विनियमनों के माध्यम से अपने लोगों को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए उत्सुक था' (सिद्दिकी 2014: 213)। सुल्तान का *दबीर-ए खास*, इख्तिसान द्वारा उसको इस्लामिक कानून के बारे में उसके ज्ञान के लिए *नुमान-ए सानी* (उस दौर का अबु हनीफा) कहा।

उच्च कार्यालयों में निम्न वर्ग में जन्मे लोगों की नियुक्ति के बारे में बरनी का विस्तृत वर्णन अप्रतिम और विशिष्ट है। इसी प्रकार, सुल्तान फिरोज़शाह तुगलक द्वारा निर्मित नहरों के जाल से सम्बन्धित विवरण अद्वितीय है, इस विषय पर किसी अन्य समकालीन इतिहासकार का विश्लेषण इतनी पैनी दृष्टिवाला और विस्तृत नहीं है। उसका तर्क था कि सुल्तान द्वारा स्थापित नहरों का जाल भावी पीढ़ियों के लिए और क्षेत्र के समुचित सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए मूल्यवान सिद्ध होगा।

1.3.5 थक्कर फेरू

थक्कर फेरू, कन्नाना (गुजरात का एक स्थान) से 14वीं शताब्दी के श्रीमाल जैन थे। उनके पिता ठक्कुर चंद थे। उन्होंने अपनी पहली नियुक्ति अलाउद्दीन खलजी के राजकोष में सिक्के, रत्नों और धातु विशेषज्ञ के रूप में प्राप्त की। कुतबुद्दीन मुबारक खलजी ने उन्हें शाही टकसाल का प्रभारी बनाया जिस पद पर वह ग़ियासुद्दीन तुगलक के शासनकाल तक लगातार बने रहे। उन्होंने अपने पुत्र हेमपाल का मार्ग-दर्शन करने के लिए विशेष रूप से रत्नों और धातुओं के शिल्प पर कई पुस्तकें लिखीं। इनमें उनकी *द्रव्य परीक्षा* (धातुओं और सिक्कों पर) और *रत्न परीक्षा* (बहुमूल्य रत्नों पर) सबसे महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। *द्रव्य परीक्षा* में चार अध्याय और 149 गाथाएँ हैं। यह रचना अत्यंत उपयोगी है जो मिश्र धातुओं (त्रि-धातु {ताँबा, चाँदी और सोना}; द्वि-धातु {ताँबा और चाँदी}) को तैयार करने और उन्हें शुद्ध करने; सिक्कों की ढलाई के तरीकों; आवश्यक आकार और वजन के साथ धातुओं और मिश्र धातुओं के शुद्धीकरण से चाँदी/सोने के सिक्कों की ढलाई पर दिलचस्प रोशनी डालती है। यह पुस्तक टकसालों में सिक्का-ढलाई की वास्तविक कार्यप्रणाली को समझने के लिए और ढाले गये वजन और परिमाण, आदि को समझने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी रचना *धातुत्पत्ती* भी धातु की उत्पत्ति और प्रशोधन और प्रगलन से संबंधित है। किसी क्षेत्र विशेष में विभिन्न धातुओं की उपलब्धता के बारे में जानना अत्यन्त आवश्यक है। उनकी भू-गर्भ प्रकाश न केवल विभिन्न प्रकार की मृदाओं से सम्बन्धित है बल्कि यह भी बताती है कि कोई मिट्टी के स्वाद से किसी विशेष धातु की उपलब्धता की पहचान कैसे कर सकता है। उनकी एक अन्य महत्वपूर्ण रचना

रत्न प्रकाश में 132 गाथाएँ हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के कीमती पत्थरों और मोतियों की चर्चा की गई है – उनकी उत्पत्ति, आकार, रंग, चमक विशिष्ट गुण, मूल्यांकन, उनके औषधीय मूल्य, यहाँ तक कि उनके तौलने की इकाइयों (*राई* से *टाँक* तक) की। थक्कर फेरू ने *वास्तु सार* की भी रचना की जो वास्तु तकनीकियों पर एक चर्चा है – नींव कैसे रखी जाए; विभिन्न प्रकार की संरचनाएँ कमरों का स्थान निर्धारण और खिड़कियों की दिशा कैसे निर्धारित की जाए। इस प्रकार फेरू की रचनाएँ तकनीकी पहलुओं, सिक्का ढ़लाई और वास्तुकला तकनीकियों को समझने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, विशेषकर जो जानकारी अन्यथा अन्य ऐतिहासिक रचनाओं में हमारे लिए उपलब्ध नहीं हैं।

1.3.6 इसामी

इसामी की *फुतूह-उस सलातीन* की विलक्षणता इस तथ्य में निहित है कि यह मध्य युग में लिखा गया एकमात्र काव्यात्मक इतिहास है। फैज़ी ने अकबर नामा को काव्यात्मक रूप में कलमबद्ध करना चाहा लेकिन यह परियोजना कभी पूरी नहीं हो पाई। इसी प्रकार बदायूनी वर्णन करता है कि मुहम्मद बिन तुगलक को समर्पित *शाहनामा* की रचना बद्र-ए चच ने काव्यात्मक रूप में की थी लेकिन यह भावी पीढ़ी के लिए प्राप्त नहीं है। काव्यात्मक शब्दाडंबरता और वैभवशाली शैली के विपरीत, इसामी का वर्णन सीधा-साधा और सरल है जिसमें अलंकरण नहीं है। हालांकि इसामी में एक इतिहासकार की प्रवृत्ति नहीं थी, वह अकसर ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के साथ मिश्रित करता है।

वहीं इसामी की रचना को परिप्रेक्ष में रखने के लिए उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानना और समकालीन घटनाक्रम को जानना आवश्यक है। इसामी प्रशासकों के एक परिवार से थे जिन्होंने तुर्की सुल्तानों को शुरुआती सेवाएँ दी थीं। उनके पूर्वज फ्रख-उल मुल्क इसामी बगदाद से मुल्तान आए और वहाँ से दिल्ली। जहाँ इल्तुतमिश ने व्यक्तिगत रूप से उनका स्वागत किया और उन्हें अपना *वजीर* बनाया (इक्तिदार हुसैन सिद्दिकी ने हालांकि *वजीर* के रूप में उनकी नियुक्ति पर संदेह व्यक्त किया है)। उनका पुत्र ज़हीर-उल मुल्क सुल्तान नसीरूद्दीन महमूद का *वकील-ए दर* था। उनके बेटे इज़्ज़ुद्दीन इसामी के दादा थे जो बलबन की सेना में *सिपह सालार* थे। हालांकि हम इसामी के पिता के बारे में कुछ नहीं सुनते हैं, उनका लालन-पालन उनके दादा इज़्ज़ुद्दीन के द्वारा किया गया था। इसामी के विरोध के पीछे मुख्य कारक मुहम्मद तुगलक के दिल्ली से दौलताबाद कूच के दौरान उनके दादा इज़्ज़ुद्दीन की मृत्यु थी जिसमें मुहम्मद तुगलक ने *उलमा, मशाएख* और कुलीनों को देवगीर जाने का आदेश दिया था। यह यात्रा 90 साल के इज़्ज़ुद्दीन के लिए घातक सिद्ध हुई जिन्होंने यातनापूर्ण यात्रा के दबाव में दम तोड़ दिया था। कोई आश्चर्य नहीं कि वह (देवगीर जाने वाले) *कारवाओं* के विलापों का वर्णन एक ऐसे व्यक्ति के रूप में करते हैं जिसे 'जिन्दा दफन किया जाना' है (निज़ामी 1982: 113)। इसने मुहम्मद बिन तुगलक के खिलाफ इतनी कड़वाहट भर दी कि जब *अमीरान-ए सादाह* ने दक्खन में विद्रोह किया और स्वतन्त्रता की घोषणा की तो उसने अलाउद्दीन बहमन शाह की सफलता का अभिवादन किया। इसामी के मन का झुकाव सूफ़ी विचारों की ओर था और वह शेख ज़ैन-उल हक़ का शिष्य था जो शेख बुरहानुद्दीन ग़रीब के *खलीफा* थे जो खुद शेख निज़ामुद्दीन औलिया के *खलीफा* थे।

इसामी *शाहनामा* की साहित्यिक परपंरा में लिखना चाहते थे। उनका वृत्तांत ग़ज़ना के सुल्तान महमूद (999-1030) से शुरू होकर 1350 तक है, जो पूरे 350 वर्षों का इतिहास है और जो बहमनी वंश के संस्थापक अलाउद्दीन बहमन शाह को समर्पित है। उनके लिए महमूद आदर्श सुल्तान था और उनके वर्णन की शुरुआत का सबसे उपयुक्त बिन्दु था। उनके अनुसार उत्तर भारत में महमूद के आक्रमण ने इस्लामी सल्तनत की नींव रखी थी, ठीक उसी तरह अलाउद्दीन बहमन शाह का वृत्तांत दक्षिण में इस्लामी सल्तनत की शुरुआत का प्रतीक था।

एक सम्भावित कवि के रूप में अपनी पहचान स्थापित करने की इच्छा के अलावा, उनका लक्ष्य अपने संरक्षक अलाउद्दीन बहमन शाह को खुश करने का था। उन्होंने काज़ी बहाउद्दीन हाजिब-ए किस्सा के निमंत्रण पर लेखन-कार्य शुरू किया। बहमन शाह का प्रभुत्व तुगलक शाह के खिलाफ एक विद्रोह का परिणाम था। 'इसलिए शासक को सबसे अच्छी तरह खुश किया जा सकता था यदि विद्रोह को उचित ठहराया जाता और मुहम्मद तुगलक को एक आततायी और एक धर्मपरित्यागी के रूप में चित्रित किया जाता' (निज़ामी 1982; 110)। इसामी ने मुहम्मद तुगलक की तुलना एक

यज़ीद और फेरो के साथ की है और इस प्रकार वह नवोदित बहमनी शासन के दावे और उसके मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध विद्रोह की वैधता को स्वीकारता है।

हालांकि वृत्तांत वार्षिकीय है पर इसामी तारीखों को दर्ज करने में कमजोर है और कई बार गलत तिथियाँ देता है। लेकिन उसका उद्देश्य किसी विशेष सुल्तान के कालानुक्रमित वर्णन को प्रस्तुत करना नहीं था, बल्कि वह काल विशेष का समग्र प्रभाववादी विवरण देना चाहता था। रज़िया के बारे में अपनी नारी-विरोधी टिप्पणी के बावजूद उसने रज़िया के बारे में कहा कि रज़िया को दिल्ली की जनता का विश्वास और लोकप्रिय समर्थन प्राप्त था, इसकी पुष्टि रज़िया के शासनकाल के राजनैतिक घटनाक्रम से होती है। वहीं इसामी द्वारा दी गई कुछ जानकारियाँ विशिष्ट हैं जो किसी और जगह नहीं मिलती हैं। नसीरुद्दीन मुहमूद के शासनकाल के अंतिम 6 वर्ष की घटनाओं के बारे में लगभग पूरी शून्यता है। इसामी इस खाई को भरता है। केवल इसामी के माध्यम से हमें पता चलता है कि सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद इल्तुतमिश का बेटा नहीं बल्कि उसका पोता था। बलबन द्वारा सुल्तान नसीरूद्दीन महमूद को ज़हर देने की जानकारी इसामी से ही मिलती है और यह भी कि कुतबुद्दीन हसन ग़ौरी की हत्या बलबन के कहने पर की गई थी। इसामी अलाउद्दीन खलजी की भरपूर प्रशंसा करता है। इसामी *अमीरान-ए सादाह* के गठन और मुहम्मद बिन तुगलक के कुलीन वर्ग पर विस्तृत जानकारियाँ देता है। इसामी शाहज़ादा मुहम्मद के एक हिन्दु राजकुमारी के साथ विवाह का उल्लेख करता है जो भारतीयकरण की प्रक्रिया पर एक दिलचस्प रोशनी डालती है और यह संकेत करती है कि यह प्रक्रिया बहुत पहले इलबरी काल में ही शुरू हो चुकी थी। हिन्दू त्यौहारों में मुहम्मद तुगलक की भागेदारी, होली के जश्न को मनाना, *जोगियों* की संगत रखना, आदि के बारे में इसामी की टिप्पणी मुहम्मद तुगलक के शासनकाल की सांस्कृतिक जीवंतता और अन्य धार्मिक विश्वासों और संस्कृतियों के प्रति उनके समतावादी दृष्टिकोण को दर्शाती है। इसी प्रकार जहाँ मिन्हाज इल्तुतमिश के सूफ़ी झुकाव पर चुप है, वहीं इसामी बगदाद के सूफियों के साथ उनके संपर्क और समां पर उनके विचार को दर्ज करता है। अलाउद्दीन बहमन शाह और बहमनी शक्ति के उदय के बारे में इसामी का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी का है और यह सबसे विस्तृत और उस काल का एक 'प्राथमिक' स्रोत है।

1.3.7 शम्स सिराज अफीफ

अफीफ दिल्ली के अभिजात्य समाज से सम्बन्धित थे। उनके दादा मलिक साद-उल मुल्क शिहाब अफीफ ने दीपालपुर में ग़ाज़ी मलिक (ग़ियासुद्दीन तुगलक) की एक *अमलदार* (राजस्व अधिकारी) के रूप में सेवा की थी। अफीफ के पिता सिराज और फिरोज़ तुगलक को पालक-भाई कहा जाता था। ग़ाज़ी मलिक के साथ शिहाब भी दिल्ली चले आए और वहाँ उनके भाग्य का सितारा बुलन्द हुआ। अफीफ बताते हैं कि उनके पिता *शब-नवीस-ए खव्वासान* (सुल्तान के रात की ड्यूटी के गुलामों की हाजिरी रजिस्टर के संरक्षक के रूप में) के पद पर और *दीवान-ए विज़ारत* में कार्यरत रहे। अफीफ के पास कभी कोई आधिकारिक पद होने का उल्लेख नहीं मिलता। हालांकि अफीफ अक्सर अपने पिता के साथ उनके विभिन्न कार्यों में और फिरोज़ के साथ शिकार-अभियानों में जाता था।

शम्स सिराज अफीफ की *तारीख-ए फिरोज़शाही* फिरोज़ शाह तुगलक के शासनकाल का 14वीं शताब्दी के अंत का वृत्तांत है। यह पाँच *किस्मों* (भागों) में विभाजित किया गया है और प्रत्येक को 18 *मुक़द्दिमों* (अध्यायों) में विभाजित किया गया है। हालांकि पाँचवें किस्म के चार मुकद्दिमा (आंशिक रूप से उपलब्ध 15वाँ *मुकाद्दिमा*) अब प्राप्त नहीं। पीटर हार्डी का तर्क है कि अफीफ की रचना सूफ़ी *तज़किरा* (जीवनी) के रूप में अधिक है। वह ऐतिहासिक घटनाओं को 'धार्मिक महापुरुषों का प्रभाव' का श्रेय देता है। यहाँ तक कि तैमूर के आक्रमण को उसके द्वारा 'अबूझ दैवीय इच्छा' में देखा जिसने दिल्ली के लोगों पर आपदा आने की अनुमति दी। यहाँ तक कि तैमूर से अछूते रहे हाँसी को सूफ़ी सन्त की बरकत (आशीर्वाद) के तौर पर स्पष्ट किया गया। हार्डी का मानना है कि तैमूर की तबाही से पहले अफीफ का उद्देश्य सल्तनत काल के 'स्वर्ण युग' को पेश करना था। हार्डी (1966: 53-54) अफीफ की आलोचना करते हैं कि 'वह अतीत की इस तरह व्याख्या नहीं करता जिससे विशिष्ट नैतिक सिद्धान्तों और कार्यवाही की सीख प्राप्त की जा सके। अतीत सच्चे धर्म की एक प्रदर्शनी है, सच्चे धर्म की पाठशाला नहीं'। 'इस प्रकार अफीफ के लिए फिरोज़ शाह की जीवनी और उसके समय के इतिहास के बीच कोई जैविक सम्बन्ध नहीं है' (हार्डी 1966: 51)। हालांकि

इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी दावा करते है कि यह 'संतचरित्र लेखन की अलंकारिता' से मुक्त है और यह 'ऐतिहासिक' है। कालक्रम और सटीक तिथियाँ प्रदान करने में अफीफ का वृत्तांत अक्सर कमजोर है।

तारीख को शायद तैमूर की तबाही के बाद अफीफ द्वारा कलमबद्ध किया गया था जब वह काफी वृद्ध हो चुके थे क्योंकि वह तैमूर के हमले के बाद की तबाही पर विलाप करते नज़र आते हैं। फिरोज़ के लखनौती, जाजनगर, नगरकोट तथा थट्टा के अभियानों की समझ के लिए अफीफ का वृत्तांत महत्वपूर्ण है। अफीफ का वृत्तांत इस संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है कि अफीफ तैमूर के 1398 के आक्रमण में दिल्ली सुल्तानों की हार के कारणों का विश्लेषण करने का प्रयत्न करता है। उसने तैमूर के हमले और तबाही द्वारा सल्तनत के विनाश को स्वयं अपनी आँखों से देखा था।

कुछ घटनाएँ हैं जिनका उल्लेख फिरोज़ के शासनकाल की अन्य ऐतिहासिक रचनाओं में नहीं मिलता है, विशेष रूप से हमें मुहम्मद बिन तुगलक की बहन के बेटे दावर खान के गद्दी के दावे के बारे में अफीफ के माध्यम से ही पता चलता है। अफीफ फिरोज़ तुगलक की सैनिकों और सेना कमांडरों को नगद वेतन के बदले छोटे *इक्तों* का अनुदान देने और इसे वंशानुगत बनाने की नीति की आलोचना भी करता है।

फिरोज़ द्वारा निर्मित भवनों, उद्यानों और नहरों का अफीफ का विवरण उत्कृष्ट और जानकारियों से भरपूर है। रजबवाह और उलुग़ खानी नहरों, जो नये निर्मित शहर हिसार फिरोज़ा तक फैली थी, के विस्तार और उस क्षेत्र की समृद्धि के सम्बन्ध में अफीफ का विवरण विस्तृत है। मुफ्त दवाओं और भोजन के साथ परोपकारी गतिविधियों (जानवर और मनुष्य दोनों के लिए) पर, विशेष रूप से शिफाखाना, का वर्णन फिरोज़ के दानशील गुणों को दर्शाता है। ज्योतिष में फिरोज़ की रुचि और एस्ट्रोलेब (astrolabe) और *तासघड़ियाल* (घड़ियाल के साथ जलघड़ी) विशिष्ट हैं। अफीफ फिरोज़ के तहत कुल राजस्व आकलन का प्रथम संदर्भ भी प्रदान करता है।

यह फिरोज़ शाह तुगलक के अधीन प्रशासन के कामकाज की कार्यप्रणाली, भ्रष्टाचार की व्यापकता, आदि का विवरण भी प्रदान करता है। भ्रष्टाचार इतना अधिक था कि दीवान-ए अर्ज़ के अधिकारियों द्वारा हाजिरी के लिए लाए गए प्रत्येक घोड़े पर रिश्वत के रूप में एक *तनका* माँगा जाता था। वह *दीवान-ए विज़ारत* में अबु राजा की नियुक्ति, वज़ीर के साथ उसके दुर्व्यवहार की आलोचना करता है और रिश्वत लेने के लिए उसे दोषी ठहराता है।

अफीफ हिन्दुओं के साथ फिरोज़ के करीबी सम्बन्धों पर दिलचस्प रोशनी डालता हैं। वह फिरोज़ के पिता (ग़ाज़ी मलिक के छोटे भाई) की बीबी नैला के साथ शादी के बारे में बताता है जो अबोहर के भाटी सरदार की बेटी थी जो उस समय दीपालपुर का गवर्नर था। बाद में उसे बीबी बानों नाम दिया गया। फिरोज़ के अपनी माँ के हिन्दू सम्बन्धियों से घनिष्ट सम्बन्ध बताए जाते हैं। उनकी माता के भाई भेरू भाटी ने फिरोज़ के अधीन शाही अंगरक्षकों के प्रमुख का पद संभाला।

अफीफ दस *मकामतों* (गुणों) की चर्चा करता है जो कि सुल्तान के पास होनी चाहिएः *शफाकत* (करूणा) *अफ्व* (क्षमा), *अद्ल* और *फज़ल* (न्याय और ज्ञान), *मुक़ातिला* और *मुहारिबा* (बुरी ताकतों के खिलाफ लड़ाई और सच्चे धर्म को बनाए रखना), *इतहार* और *इफ्तिखार* (उदारता और गरिमा), *अज़ामत* और *रब* (शक्ति और महिमा), *हुशियारी* और *बेदारी* (सर्तकता और लालच में संयम), *इन्तिबाह* और *इबरत* (एहतियातें), *फतह* और *नुसरत* (विजय और सुघढ़ता), *किरासत* और *फिरासत* (अक्लमंदी और दूरदर्शिता)। अफीफ फिरोज़ शाह तुगलक की प्रशंसा करता है जिनमें सभी राजा और सन्तों की *मकामातें* मौजूद थीं। फिरोज़ की श्रेष्ठता साबित करने के लिए वह अक्सर अलाउद्दीन के शासनकाल के साथ उसके शासनकाल की तुलना करता है। उनके अनुसार अलाउद्दीन के शासन काल में कीमतें कम थीं, लेकिन फिरोज़ शाह तुगलक के शासनकाल में और भी कम थीं। उनका शासनकाल बेहतर था क्योंकि यह सफलता बिना 'प्रयासों' के प्राप्त की गई थी।

1.3.8 याह्या बिन सरहिंदी

याह्या का वृत्तांत सैय्यद काल (1400-1438) के ऐतिहासिक घटनाक्रम को जानने का एकमात्र समकालीन स्रोत है। याह्या की रचना के महत्व को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि निज़ामुद्दीन अहमद ने अपने सैय्यदों के वर्णन की याह्या से लगभग अक्षरशः नकल की है। यहाँ तक

कि बदायुनी और फरिश्ता के सैय्यदों के वृत्तांत भी मुख्यतः याह्या से ही लिए गए हैं।

याह्या बिन अहमद सरहिंदी अपनी *तारीख-ए मुबारकशाही* मुईजुद्दीन ग़ौर से प्रारम्भ कर सैय्यद शासक मुहम्मद शाह के राज्यारोहण (1434) तक का वृत्तांत है। तुगलक काल से पूर्व का उसका वर्णन अत्यधिक संक्षिप्त है। उसका वृत्तांत इस अर्थ में एक 'राजवंशीय' इतिहास है कि यह प्रत्येक शासक के शासन की चर्चा अलग-अलग करता है।

याह्या दरबार से सम्बद्ध नहीं था हालांकि वह तत्कालीन शासक से संरक्षण और अनुग्रह पाने की इच्छा से लिख रहा था। इसलिए उन्होंने अपनी रचना सुल्तान मुबारक शाहर को समर्पित की। लेकिन मुबारक की अचानक हत्या ने लेखक को असमंजय की स्थिति में छोड़ दिया। प्रारंभिक अवधियों के लिए याह्या ने मुख्यतः मिन्हाज, अमीर खुसरो की *किरान-उस सादैन* और बरनी से नकल की है।

याह्या की लेखन शैली 'अनिवार्य रूप से इस्लामी' थीः वह अल्लाह, पैगम्बर, खलीफा, हसन और हुसैन के आह्वान के साथ वह मुहम्मद बिन साम के तहत् इस्लाम की सफलता पर अपनी चर्चा शुरू करता है। वह इतिहास में दैवीय हस्तक्षेप में विश्वास करता था; ऐतिहासिक घटनाओं के परिभाषित ईश्वरीय उद्देश्य थे। मुहम्मद बिन तुगलक की परियोजनाओं के अपवाद को छोड़कर, जिनमें वह 'मानवीय कार्यों और निर्णयों' को श्रेय देता है, उसके लिए हर कार्य 'ईश्वर की इच्छा शक्ति' का परिणाम था। चाहे वह कुतबुद्दीन की गिरने से घातक मौत हो या इल्तुतमिश की यूल्दूज़ पर विजय। बरनी के विपरीत जिसका मानना था कि केवल 'सत्य' को ही पेश करना चाहिए, याह्या अक्सर निष्कर्ष निकालता है कि 'केवल ईश्वर ही सत्य को जानता है'। याह्या के वर्णन 'केवल सुल्तानों और कुलीनों द्वारा कार्यवाही की बाह्य भौतिक अभिव्यक्तियों के रिकॉर्ड मात्र है। इतिहास {उसके लिए} सैन्य और राजनैतिक घटनाओं का सिलसिला है' (हार्डी 1966: 60)। वह मुहम्मद बिन साम और कुतबुद्दीन ऐबक को सल्तनत का संस्थापक मानता है। बरनी का अनुसरण करने के बावजूद वह अलाउद्दीन के आर्थिक उपायों का वर्णन छोड़ देता है। हालांकि मुहम्मद बिन तुगलक के बारे में उसका विवरण अपेक्षाकृत विस्तृत है और वह मानवीय क्रियाओं के परिणामस्वरूप घटनाओं का विश्लेषण करने की कोशिश करते हैं। उनका तर्क है कि मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में इन कारणों से अलाउद्दीन के शासनकाल की शान्ति और समृद्धि ने अपराधों, भ्रष्टाचार, विद्रोह और आतंक का आकार ले लियाः (i) तरमाशीरीन के तहत मंगोलों द्वारा नगरों की लूट; (ii) भूमि कर में वृद्धि के कारण किसानों को अपनी भूमि को छोड़कर भागने के लिए विवश होना पड़ा; (iii) दिल्ली से दौलताबाद तक पूरी आबादी का स्थानान्तरण; (iv) कराचील अभियान जिसके परिणामस्वरूप लगभग अस्सी हजार शक्तिशाली सैनिकों को खोना पड़ा; (v) मुहम्मद बिन तुगलक की दमनकारी नीतियाँ; (vi) उत्पीड़न, हिंसा और जुल्म। याह्या का तर्क है कि इन कारणों से 'राज्य व्यवस्था पूरी तरह से अव्यवस्था में घिर गई'।

ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति उसका दृष्टिकोण प्रमुखतः 'लापरवाही, उदासीनता और असंबद्धता' का था। पीटर हार्डी (1966: 63) तर्क देते हैं कि, 'याह्या के वृत्तांत में घटनाक्रम पहले घटित होता है, बाद में उसके कारणों को कदाचित् घटनाक्रम की व्याख्या करने के लिए घसीटकर उसमें लाया जाता है ... (वह) अतीत का वर्णन मात्र एक मूक दर्शन की तरह करता है'। 'याह्या बिन अहमद मात्र साहित्यिक सृजन करता है ... निष्ठुर संसार के दिखावे से दूर रहता है ... जो भारतीय मुस्लिम पाठक पढ़ना चाहता था ... इतिहास, याह्या इब्न अहमद के लिए प्रेषित तथ्य मात्र है, जिस पर प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता, बल्कि सहसा काव्य रूप में यथोचित सूक्तियों और परम्परागत नैतिक मूल्यों द्वारा संवारा जा सकता है' (हार्डी 1966: 67)।

बोध प्रश्न-2

1) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि मिन्हाज के वर्णन में सल्तनत की राज्य व्यवस्था में गैर-तुर्की कुलीनों की भूमिका से सम्बन्धित जानकारी का अभाव है?

.....

.....

.....

2) इतिहास लेखन में बरनी के योगदान का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

3) ठक्कर फेरू कौन था? सल्तनत काल में मुद्रांकन व्यवस्था, भार और माप और धातु प्रौद्योगिकी पर उसकी रचनाएँ क्या प्रकाश डालती हैं।

.....

.....

.....

1.4 *इंशा* (पत्र-लेखन) परंपरा

इंशा का शाब्दिक अर्थ है 'सृजन'। हालांकि, मध्यकाल के संदर्भ में यह व्यक्तिगत पत्रों और राज्य के पत्राचारों को दर्शाता है। वे मध्यकाल के दौरान प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों और विचारों के साथ-साथ प्रशासन के काम-काज के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी देते हैं। सल्तनत काल के *इंशा* संग्रह जो आज प्राप्त होते हैं वे मात्र कुछ ही हैं और उनमें सबसे प्रमुख हैं अमीर खुसरो की *एजाज-ए खुसरवी* और आइन-उल मुल्क अब्दुल्ला बिन महरू की *इंशा-ए महरू*। 15वीं-16वीं शताब्दी में दक्खन में रचित सर्वश्रेष्ठ *इंशा* संग्रह ख्वाजा जहां महमूद गावां की *रियाज़-उल इंशा* और शाह ताहिर हुसैनी की *इंशा-ए ताहिर* है। सल्तनत काल के दौरान *कातिब* (लेखक), *दबीर* (आमतौर पर सल्तनत काल में इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द) और *मुंशी* (मुगलों द्वारा आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने वाला) के साथ *दीवान-ए इंशा* का एक अलग विभाग मौजूद था। वे आधिकारिक-पत्रों के मसौदे तैयार करने के लिए जिम्मेदार थे। *इंशा* लेखन काफी हद तक *दीवानी* के संदर्भ में लिखा गया था। *इंशा* साहित्य का सीधा संबंध दिल्ली सुल्तानों और बाद में मुगलों की कार्यालयीय पद्धतियों (chancellery practice) से था। दिलचस्प बात यह है कि प्राप्त *इंशा* संग्रह उन लोगों के हैं जिनके पास *दीवान-ए इंशा* कार्यालय में कोई पद नहीं था। न तो आइन-उल मुल्क और न ही अमीर खुसरों ने कभी *दीवान-ए इंशा* विभाग में सेवा की, फिर भी उनके संग्रह में राज्य पत्राचार के साथ-साथ महत्वपूर्ण निजी पत्राचार भी शामिल हैं। ये दस्तावेज अक्सर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हुए हैं क्योंकि इन दस्तावेजों को लिखने का उद्देश्य बड़े पैमाने पर उपलब्ध सभी प्रकार के दस्तावेजों की शैलियों के नमूने प्रदान करने का था।

इस प्रकार दो प्रकार के *इंशा* थे, एक पत्र-लेखनशैली से सम्बन्धित लेखन, इस प्रकार वे आवश्यक रूप से वास्तविक नहीं हो सकते थे। ख्वाजा जहां महमूद गावां का *मनाज़िर-उल इंशा* ऐसा ही एक उदाहरण है। अन्य प्रकारों में वास्तविक दस्तावेज/पत्र/पत्राचार संरक्षित हैं। ये दूसरे प्रकार के *इंशा* विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व के हैं।

जहाँ अमीर खुसरों की *इंशा* लेखन की शैली अत्यधिक अलंकृत है, वहीं *इंशा-ए महरू* अपेक्षाकृत सरल रूप में लिखी गई है। *एजाज-ए-खुसरवी* का संकलन 1292 सी ई के आसपास किया गया था। अमीर खुसरो स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अपनी कल्पना का उपयोग तथ्यात्मक-पत्रों के प्रारूप लेखन में भी किया था। हालांकि उनके कुछ पत्र समकालीन इतिहास/समाज पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। अमीर खुसरों का *इंशा* संग्रह इस अर्थ में भी उपयोगी है कि इन पत्रों के माध्यम से हमें उस अवधि की विभिन्न साहित्यक और सामाजिक शख्सियतों के बारे में जानकारी मिलती है। यह समकालीन प्रशासन, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों और उस समय की धार्मिक और साहित्यक परंपराओं पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है।

रशीदुद्दीन फज़लुल्लाह की *मुकातबात-ए रशीदी*, हालांकि यह एक हमदानी द्वारा लिखी गई थी, जो इल-खानिद ईरान के एक शक्तिशाली *वज़ीर* थे, इल-खानिद-खलजी संबंधों को समझने के लिए महत्वपूर्ण रचना है। पत्र लगभग 1304-1307 के दौरान लिखे गये थे जब फज़लुल्लाह ने इल-खानिद शासक उल्जैतु (1304-1316) के दूत के रूप में यहाँ दौरा किया था। यह बताया जाता है कि अलाउद्दीन खलजी ने गरम जोशी से उसका स्वागत किया था और यहाँ तक कि उन्हें चार गाँव *सुयूरघाल* (राजस्व मुक्त अनुदान) के रूप में दिये थे। इसमें अलाउद्दीन का एक पत्र शामिल है जो

फ़ज़लुल्लाह को भेजा गया था जो बताता है कि अलाउद्दीन की मध्य एशिया के मंगोलों से सम्बन्धित चिन्ताओं के बावजूद उसके इल-खानिदों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। उनके पत्रों के माध्यम से हमें उस काल के प्रतिष्ठित साहित्यक-वर्ग के बारे में भी पता चलता है। उन्होंने उस काल के एक विशिष्ट गणितज्ञ के रूप में दिल्ली के मौलाना शमसुद्दीन हिन्दी का विशेष रूप से उल्लेख किया है।

इंशा-ए महरू, महरू के व्यक्तिगत पत्राचार का एक संग्रह है। उनके विशेष रूप से महत्वपूर्ण पत्र वह हैं जो उन्होंने फिरोज़ शाह तुगलक के शासन काल के दौरान मुल्तान के गर्वनर के रूप में लिखे थे, हालांकि कुछ पत्र मुहम्मद तुगलक के शासन काल से भी सम्बन्धित हैं। *इंशा* में कुल 134 दस्तावेज हैं जिनमें मुख्य रूप से *मंशूर, मिस्ल, अहद-नामा* (निष्ठा की शपथ), *अर्ज़दाश्त*, व्यक्तिगत पत्र और उद्घोषणाएँ शामिल हैं। यह इस अवधि के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और प्रशासनिक इतिहास पर विशिष्ट रोशनी डालते हैं। *इंशा* धार्मिक अनुदानों के उद्देश्य पर भी दिलचस्प जानकारी प्रदान करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आमतौर पर अनुदानों को व्यक्तिगत कृपा के लिए नहीं दिया जाता था, इसकी बजाए इसका उद्देश्य व्यक्तिगत पुण्य कमाना था, इस तथ्य की पुष्टि इब्न बतूता द्वारा भी होती है। महरू धार्मिक अनुदानों को प्रदत्त किए जाने की प्रकृति को भी समझने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। महत्वपूर्ण है कि शिक्षकों, *मुअज़्ज़िनों*, आदि को पूर्ववर्ती सुल्तानों की जैसे मुहम्मद बिन साम, प्रिंस मुहम्मद, ग़ियासुद्दीन तुगलक, आदि की आत्माओं की शांति के लिए दुआ करने के लिए भी अनुदान दिये जाते थे। *अहद-नामा* जो *अमीरों* की वफादारी के शपथ-पत्र थे, वह, जैसा कि के. ए. निज़ामी कहते हैं, 'ताकत के बजाए कमजोरी का संकेत थे'। ऐसे *अहद-नामों* की उपस्थिति अलाउद्दीन या मुहम्मद तुगलक के काल के दौरान नहीं मिलती है। कुछ पत्र करों की गैर-प्राप्ति से सम्बन्धित हैं। एक पत्र बेगार की अस्वीकृति का सुझाव देता है। महरू के पत्रों से हमें राजस्व शब्दावली को समझने में भी मदद मिलती है, विशेष रूप से करों की प्रकृति को जैसे कि *जज़िया, खराज, खेत, डांगना, शिक, इदरार, खराजी,* आदि। महरू के एक पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि फिरोज़ ने *इबाहती* (किसी स्त्री से औपचारिक तलाक से पहले विवाह करना) के खिलाफ इतना कठोर कदम क्यों उठाया? यह बताता है कि इस तरह के रुझान बढ़ रहे थे इसलिए फिरोज़ ने इस दस्तूर के खिलाफ कठोर कदम उठाए। *ज़मींदार* वर्ग की संरचना से सम्बन्धित एक बहुत ही दिलचस्प पहलू को स्पष्ट किया गया है जो फिरोज़ की 1353 की उद्घोषणा की पुष्टि करता है कि *मुकद्दम* और *मफरोज़ियों* ने मिलकर *ज़मींदार* वर्ग का गठन किया।

1.5 आधिकारिक दस्तावेज

आधिकारिक दस्तावेजों का विस्तार इतना अधिक है कि गिनती करना भी मुश्किल है। इसमें ***फरमान*** (सम्राट के आदेश), ***निशान*** (राजकुमार द्वारा जारी किये गये आदेश), ***परवाना*** (शासक द्वारा अपने अधीनस्थों को जारी किये गये निर्देश), ***हस्ब-उल हुक्म*** (सम्राट के निर्देशों पर एक मन्त्री द्वारा जारी किये गये आदेश), ***दस्तूर-उल अमल*** (प्रशासनिक या राजकोषीय नियम), आदि शामिल हैं। यहाँ हम मुख्य रूप से *दस्तूर-उल अमल* पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

गद्य के नमूनों के अलावा *एजाज-ए खुसरवी* में *फतहनामा, फरमान, परवाना, अर्ज़दाश्त*, आदि के दस्तावेज भी शामिल हैं। खुसरो ने प्रधानतः इनकी रचना एक 'उत्तम परामर्शदाता' के रूप में की – एक अच्छे गवर्नर के क्या कर्तव्य हैं?; व्यापारियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए; सीमांत क्षेत्रों/सरहदों की सुरक्षा के लिए क्या रणनीति अपनानी चाहिए; एक विजेता और परास्त के मध्य क्या संबंध होने चाहिए। उनके द्वारा उल्लखित दो ऐसे महत्वपूर्ण पत्र हैं – अलाउद्दीन के पदारोहण पर जारी किया गया *फरमान* और लखनौती की विजय के बाद बलबन द्वारा जारी किया गया *फरमान*।

अपने *फतहनामा* (1281; बलबन की लखनौती विजय के पश्चात् जारी) में खुसरो सुल्तान को हाथियों और खज़ाने की प्राप्ति के लिए ओडिशा को विजित करने की आवश्यकता की सलाह देता है। शाहज़ादे फरीद खान को संबोधित खुसरो द्वारा वर्णित *फरमान* भी उसकी भावी सलाह को प्रतिबिम्बित करत है जिसमें अलाउद्दीन की नीति के प्रति छिपी आलोचना शामिल थी कि माबार और द्वारसमुद्र को सुल्तान द्वारा सीधे शासित करना चाहिए था न कि उन्हें स्वतंत्र छोड़ मात्र वार्षिक नज़राने से संतुष्ट होना चाहिए था।

खुसरो सलाह देता है कि प्रांतों में विद्वानजनों और योद्धाजनों दोनों की नियुक्ति की जानी चाहिए। उसने लोगों को दूसरों के धार्मिक विश्वासों के प्रति सहिष्णुता दिखाने की इच्छा जाहिर की। बद्र हाजी (एक काल्पनिक नाम) द्वारा शाहज़ादा खिज्र खान को लिखी एक ***अर्जदाश्त*** में वह हिंदुकुश को भारत की प्राकृतिक सीमा के रूप में प्रस्तुत करता है; एक ऐसी आदर्श सीमा-रेखा जिसके लिए शाहजहाँ हमेशा संघर्षरत रहा। एक दस्तावेज़ में खुसरो यह व्यक्त करता है कि वर्णाश्रम के अनुसार 'निम्न' कुल में जन्मे व्यक्तियों को उच्च पद प्रदान नहीं किए जाने चाहिए; वह आभिजात्य कुल में जन्म का समर्थक था; उसने अफगानों का, उनके अपरिष्कृत व्यवहार के कारण, तिरस्कार किया। उसके द्वारा सूफियों को *उलमा* से ऊँचा स्थान दिया गया, हालांकि उसका विश्वास था कि वे 'अंधेरे में मशाल' समान हैं। वह ईमानदार *काज़ियों* की प्रशंसा करता है, लेकिन उनके कपटपूर्ण व्यवहारों की निंदा करता है।

दस्तूर-उल अमल प्रशासन की वास्तविक कार्यप्रणाली को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हमारे लिए उपलब्ध इस तरह का सबसे पुराना दस्तावेज *दस्तूर-उल अलबाब फी इल्म-इल हिसाब* है, जो फिरोज़ शाह के समय में अब्दुल हमीद मुहर्रि ग़ज़नवी द्वारा लिखा गया था। उन्होंने इसकी रचना मुख्यतः अपने बेटे को बही-खाते की कला में निर्देश देने के लिए की थी। यह संकलन विभिन्न प्रशासनिक प्रक्रियाओं और मानदंडों के साथ-साथ इस अवधि के दौरान इस्तेमाल किये जाने वाले कई तकनीकी शब्दों पर रोशनी डालता है।

1.6 अभिलेख

इस भाग में हमारा ध्यान मुख्य रूप से अरबी/फारसी और संस्कृत अभिलेखों पर केन्द्रित है।

1.6.1 अरबी और फारसी अभिलेख

फारसी और संस्कृत अभिलेख शैली के बीच मुख्य अन्तर यह है कि 'जबकि 1200 से पूर्व के हिन्दू अभिलेखों (संस्कृत) का ऐतिहासिक स्रोतों की भारी कमी के कारण विशेष महत्व था ... इतिहास के मुस्लिम काल (फारसी और अरबी अभिलेखों) में अनुपस्थित हैं' (बेन्द्रे 1944)। वास्तव में हमें अरबी और फारसी अभिलेखों में संक्षिप्तता मिलती है, जबकि संस्कृत अभिलेख वंशावली विवरणों से भरपूर हैं; और उत्कीर्ण-कर्ता/राजा/दानकर्त्ता की व्यक्तिगत जानकारी पर विशिष्ट प्रकाश डालते हैं। हालांकि नागौर (राजस्थान) और गुजरात के फारसी अभिलेख इस संबंध में अपवाद हैं। वे वंशावलियों में समृद्ध हैं।

शुरुआती अरबी अभिलेख सिंध, गुजरात और हरियाणा में पाये जाते हैं। बंगाल से मुगलों से पहले के सभी अभिलेख अरबी में हैं; दिलचस्प बात यह है कि फारसी के सबसे पुराने अभिलेखों में से एक बंगाल (1229-1231 बल्का खान खलजी का) से प्राप्त है। इसके विपरीत गुजरात के सभी सल्तनत कालीन अभिलेख फारसी में हैं। हालांकि गुजरात सल्तनत (1406-1580) के दौरान अरबी भाषा का प्रभुत्व था।

एन्थनी वेल्च का तर्क है, यहाँ तक कि *कुरान* की *आयतों* को उत्कीर्ण करते हुए, उन्हें भी 'संदर्भ से बाहर' निर्मित नहीं किया जाता था। वेल्च के अनुसार, उनका 'प्रतीकात्मक और अलंकारिक' अर्थ था। वेल्च ने कुतब-भवन-समूह में अंकित *कुरान* की *आयतों* का विश्लेषण करते हुए तर्क दिया कि इसने *दार-उल इस्लाम* के उद्देश्य को पूरा किया और वे एक सुल्तान के धार्मिक विचारों और मूल्यों को प्रतिबिंबित करने की दृष्टि से मूल्यवान हैं।

स्थानीय स्तर पर सल्तनत प्रशासन की कार्यप्रणाली को समझने के लिए भी फारसी अभिलेख महत्वपूर्ण हैं। 1333 के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के चुनार अभिलेख में उनके *वज़ीर* के रूप में एक हिन्दू साई राज की नियुक्ति दर्ज की गई है। यद्यपि *आरिज़-ए मुमालिक* (सैन्य विभाग के प्रमुख) पर पर्याप्त जानकारी उपलब्ध है, लेकिन प्रांतीय स्तरों पर *आरिज़* की उपस्थिति पर शायद ही कोई जानकारी उपलब्ध है। 1404-1405 का अभिलेख प्रांतीय स्तर पर भी इस तरह के *आरिज़* की उपस्थिति दर्शाता है। इसी प्रकार सल्तनत काल में *हाजिब* की उपस्थिति अधिकारियों और सुल्तान के बीच एक मध्यस्थ की थी। 1319 का फिरोज़ का अभिलेख दिलचस्प रूप से *हाजिब-ए हिन्दुआन* के कार्यालय का उल्लेख करता है जो संभवतः सुल्तान और दरबार में आने वाले प्रान्तीय

हिन्दू अधिकारियों के बीच संबंध स्थापित करने की कड़ी था। इसी प्रकार लोदी काल के अभिलेखों से पता चलता है कि *शिक़* और *परगना* के प्रांतीय विभाजन लोदियों के तहत मजबूती से स्थापित हो चुके थे।

कुछ अभिलेख प्रचलित साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों पर प्रकाश डालते हैं। नीलगरों की मस्जिद (1381, चाटसू, राजस्थान), रंगरेजों की मस्जिद (1439, हिन्डौन, राजस्थान) पर पाए गए कुछ अभिलेख जाति/पेशे से सम्बन्धित पूजा-स्थलों (मस्जिदों) की उपस्थिति की ओर संकेत देते हैं। महमूद शाह तुगलक (1394-1413) के अभिलेखों में से एक (1400-1401) तैमूर के आक्रमण से पैदा हुई अराजकता और आंतक के स्पंदन पर प्रकाश डालता है।

फिरोज़ शाह की *फुतुहात-ए फिरोज़शाही* शुरू में फिरोज़ाबाद की जामी मस्जिद पर अंकित की गई थी, शायद अशोक के स्तम्भों के अभिलेखों से प्रेरित होकर लोगों के साथ संवाद करने के लिए। इसका मुख्य उद्देश्य सुल्तान फिरोज़ की उपलब्धियों, उदारता और कल्याणकारी गतिविधियों की सराहना करना था। के. ए. निज़ामी इसे 'अनिवार्य रूप से एक धार्मिक अभिलेख' मानते हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध ज्यादातर धार्मिक गतिविधियों से है और यह शुरुआत में जामी मस्जिद की दीवारों पर अंकित की गई थी। *फुतुहात* में *मुलहिद* (विधर्मी) और *इबाहती* (काफिर) का ज़िक्र और अहमद बिहारी, रूक्न और मेंहदी को दी गई सजाओं से यह लगता है कि इस अवधि में विधर्मी रुझान प्रखर हो चुके थे। यह फिरोज़ की भवन निर्माण गतिविधियों और यहाँ तक कि निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के अन्तर्भाग के निर्माण कार्यों का विस्तृत वर्णन देती है। हालांकि उसके लौकिक निर्माण कार्यों जैसे कि नहरों के जाल-तन्त्र का वर्णन इसमें मौजूद नहीं है। फिरोज़, जलाश्यों (कुंडों) की यात्रा पर उसके द्वारा लगाये गए सामान्य प्रतिबन्ध और स्त्रियों पर, विशेष रूप से सूफ़ी दरगाहों की यात्रा पर, लगाए प्रतिबन्धों का वर्णन करता है। इन सबसे फिरोज़ के धार्मिक विचारों के बारे में अन्तर्दृष्टि मिलती है। सुल्तान एक राजकीय अस्पताल के निर्माण का जिक्र भी करता है जहाँ मुफ्त भोजन और दवाइयाँ दी जाती थीं। यह, यह भी बताता है कि फिरोज़ को खलीफा से एक *मन्शूर* (अभिषेक-पत्र) प्राप्त हुआ था।

1.6.2 संस्कृत अभिलेख

सल्तनत काल के ऐतिहासिक विकासक्रम को समझने के लिए संस्कृत अभिलेख महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

संस्कृत अभिलेखों में सबसे महत्वपूर्ण है पालम बावली अभिलेख जो इसके निर्माणकर्त्ता दिल्ली निवासी उद्धारा ने बावली की सीढ़ियों पर उत्कीर्ण करवाया था। हालांकि यह दिनांकित नहीं है लेकिन सुल्तानों की वंशावली बलबन पर आकर समाप्त होती है जो यह दर्शाती है कि यह बलबन के काल का है। यह नागरी लिपि में लिखा गया 31 पंक्तियों का अभिलेख है। यह दिलचस्प है कि यह अभिलेख शहाबुद्दीन मुहम्मद बिन साम से शुरू कर बलबन तक सुल्तानों की एक पूर्ण सूची प्रदान करता है। बलबन को *हमीर* और *नायक* जैसी हिन्दू पदवियों से सुशोभित किया गया है। दिलचस्प बात यह है कि इसमें आरामशाह का नाम शामिल नहीं है जो यह दर्शाता है कि संभवतः आरामशाह को आधिकारिक रूप से शासक के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी। इसी प्रकार जैसे रज़िया के सिक्कों में जलालुद्दीन का नाम है यहाँ भी रज़िया के लिए जलालुद्दीन शब्द का उल्लेख है। एक अन्य महत्वपूर्ण जानकारी हमें भारत के तत्कालीन क्षेत्रों के संबंध में प्राप्त होती है (बलबन के साम्राज्य की सीमा को परिभाषित करने के संदर्भ में; लेकिन इसे बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया है)। यह गौड़ (बंगाल), आन्ध्र, केरल, कर्नाटा (कर्नाटक), गुर्जर और लता (गुजरात) की बात करता है। इसी तरह यह निर्माणकर्त्ता उद्धारा की पहचान उक्क (उच्छ, मुल्तान के पास) से करता है। यह दो अर्थों में महत्वपूर्ण हैः एक, यह हमें सूचित करता है कि वह स्थान सतलज, व्यास और चिनाब और सिन्धु के संगम पर स्थित था। यह दर्शाता है कि ये नदियाँ स्वतंत्र रूप से तब तक बहती थीं जब तक कि वे उच्छ में नहीं पहुँचाती थीं। इसके अलावा यह अभिलेख मुल्तानी व्यापारियों की दिल्ली में उपस्थिति पर भी प्रकाश डालता है। उद्धारा संभवतः दिल्ली आकर बसा एक मुल्तानी व्यापारी था। बरनी बताता है कि मुल्तानी दिल्ली में एक समृद्ध व्यापारी समुदाय था। यहाँ तक कि राज्य (बलबन) को ऋण दिया करता था। उद्धारा के लिए *ठाकुर* उपाधि का उपयोग किया गया है। यहाँ गैर-क्षत्रिय के लिए *ठाकुर* उपाधि का उपयोग दिलचस्प है; इसी तरह का उपयोग वाराणसी जिले में कपिलधारा प्रस्तर अभिलेख (1194) में पाया जाता है जहाँ कपिलधारा के जलाशय के निर्माता

लक्ष्मीधारा के लिए *ठाकुर* का उपयोग किया गया जो एक वास्तव्य (श्रीवास्तव; एक कायस्थ) था। यह अभिलेख इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हरियाणा शब्द के उपयोग का सबसे पहला संदर्भ प्रदान करता है (मिन्हाज ने अपनी *तबकात* में भी इस शब्द का इस्तेमाल किया है)।

कुतबमीनार प्रस्तर अभिलेख से पता चलता है कि अलाउद्दीन खलजी ने कुतबमीनार की चौथी मंजिल में संरचनात्मक परिवर्तन किया और इसमें एक *छतरी* जोड़ी। मुहम्मद बिन तुगलक के काल के 1326 और 1332 के कुतबमीनार अभिलेखों में उल्लेख है कि चौथी मंजिल बिजली गिरने से क्षतिग्रस्त हो गई थी और इसकी मरम्मत मुहम्मद तुगलक ने करवाई। एक अन्य कुतबमीनार अभिलेख 1369 का है जो यह बताता है कि मीनार की सबसे ऊपरी मंजिल बिजली गिरने के कारण क्षतिग्रस्त हो गई थी। इसलिए इसकी मरम्मत फिरोज़ तुगलक द्वारा करवाई गई थी – एक तथ्य जिसकी पुष्टि फिरोज़ की *फुतुहात-ए फिरोज़शाही* भी करती है। यह शिल्पकारों पर भी प्रकाश डालता है। जो राज मिस्त्री काम पर लगाए गए वो सभी हिन्दू प्रतीत होते हैं – नाना, सलहा, लोला, लक्ष्मण।

अन्य दो अभिलेख – एक नारायणा प्रस्तर अभिलेख (1327), नारायणा गाँव (अफीफ ने इसका उल्लेख कस्बे के रूप में किया है) में बनवाई गई बावली श्रीधर रोहीतगा (रोहतक से) द्वारा उत्कीर्ण करवाई गई थी और दूसरा एक अन्य बावली पर जो सरवाला गाँव में (रायसीना हिल्स, नई दिल्ली; 1328) एक व्यापारी खेतला और अगरोहा के पैताला द्वारा उत्कीर्ण करवाया गया था – यह संकेत देते हैं कि राजधानी के स्थानांतरण (1326) के बाद भी दिल्ली पूरी तरह उजाड़ नहीं हुई थी बल्कि वहाँ समृद्ध व्यापारी समुदाय निवास कर रहे थे और फल-फूल रहे थे।

संस्कृत के अभिलेखों में अक्सर *रानका* और *राउत* का उल्लेख मिलता है। यह हमें *रानका* और *राउतों* के पदानुक्रम (राउत के लिए संक्षिप्त नाम रा) को समझने में मदद करता है। अभिलेखों से पता चलता है कि उन्हें *रानका* से निचले दर्जे में रखा गया था। 1262 के झांसी किले के प्रस्तर अभिलेख में यह दर्ज है कि यादव परिवार के *रानका* अभय देव ने *राउत* सधेका के पुत्र सुल्हन को एक गाँव (सकेला) अनुदान में दिया था।

इसके अलावा झांसी जिले में अजयगढ़ और देवगढ़ किलों में उत्कीर्ण कई अभिलेख इस क्षेत्र में 13वीं शताब्दी में जैनियों के व्यापक प्रभाव को दर्शाते हैं। इसी प्रकार ललितपुर प्रस्तर अभिलेख (1424) कुछ विशिष्ट तथ्यों पर प्रकाश डालता है जो अन्यथा साहित्यिक स्रोतों के माध यम से हमें ज्ञात नहीं हैं। इसमें उल्लेख है कि मालवा के सुल्तान होशंग शाह (उर्फ अल्प खान) की एक जैन पत्नी अंबिका थी जिसका बेटा होली था जिसने पद्मनंदी और दामवसंत की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित किया था, जो जैनियों के प्रति होशंग शाह के सहिष्णु रवैये का संकेत देता है, यहाँ तक कि उसकी पत्नी और पुत्र जैन धर्म का पालन करते रहे।

सोरों में सीताराम जी के मंदिर के स्तंभ और प्राचीर अभिलेखों में 38 तीर्थ-यात्रियों के रिकॉर्ड दर्ज हैं। वे इस क्षेत्र में तीर्थ-यात्रा की प्रवृत्ति पर दिलचस्प रोशनी डालते हैः 1290 तक हम तीर्थयात्रियों के लगातार अभिलेखीय रिकॉर्ड यहाँ पाते है (15 तक)। लेकिन खलजी और तुगलक शासकों के दौरान केवल एक ही ऐसा अभिलेखीय रिकॉर्ड उपलब्ध है जो इसके घटते महत्व के बारे में संकेत देता है। तत्पश्चात् सैय्यद और लोदी काल से हमें पुनः 16 अभिलेख मिलते हैं (जिनमें से 13 अकेले बहलोल लोदी के काल के हैं) जो दर्शाते हैं कि लोदी शासकों के तहत इस तीर्थ केन्द्र का महत्व पुनः बढ़ गया था।

इस अवधि के दौरान पाए गए कई अभिलेख द्वि-भाषीय (संस्कृत और फारसी) हैं। इनमें 1517 का मुबारकपुर कोटला अभिलेख महत्वपूर्ण है। यह संस्कृत और फारसी में लिखा गया है। यह बीबी मुराद खातून द्वारा एक कुएँ (*इमारत-ए चाह*) के निर्माण से सम्बन्धित है जो दिलावर खान सरवानी (बहलोल लोदी के एक कुलीन) और बहलोल लोदी की बेटी आयशा, जो शेख सिकन्दर सेराती की शिष्या थी, की बेटी थी। हम केवल इस अभिलेख के माध्यम से ही बहलोल लोदी की बेटी आयशा के बारे में जानते हैं।

बोध प्रश्न-3

1) *इंशा* क्या हैं?

.....

.....

.....

2) *इंशा-ए महरू* के महत्व पर संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

3) *एजाज़-ए खुसरवी* पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

4) दिल्ली सल्तनत के इतिहास के निर्माण के एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में संस्कृत अभिलेखों के महत्व की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

1.7 सूफ़ी लेखन

सूफ़ी वृत्तांतों में हमें तीन प्रकार के साहित्य मिलते हैं – ***मलफूज़ात,*** *मक़तूबात* (पत्र) और सूफियों की जीवनी सम्बन्धित वृत्तांत। सूफ़ी साहित्य में *मलफूज़ात* सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। *मलफूज़ात* सूफियों/फकीरों के मध्य के संवाद हैं। हालांकि, ये *मलफूज़ात* मुख्य रूप से नैतिक और धार्मिक पहलुओं को संबोधित करते हैं, फिर भी वे सामान्य जीवन और आम लोगों की स्थितियों पर विशिष्ट रोशनी डालते हैं, वे पहलू जिन्हें अन्यथा आधिकारिक इतिहासकार और इतिवृत्तकार संबोधित करने में विफल रहे हैं। के. ए. निज़ामी (1982) ने ठीक ही कहा है कि 'अनेक मामलों में सूफ़ी लेखन से मिली जानकारी यादगार और रचित राजनैतिक वृत्तांतों के लिए एक संशोधक के रूप में कार्य करती है'। भारत में इस तरह के *मलफूज़ात* लेखन की शुरुआत अमीर हसन सिज़्ज़ी की *फवायद-उल फुआद* (1308 से 1322-23 के मध्य के संवादों का संकलन) से होती है। यह शेख निज़ामुद्दीन औलिया के मध्य संवाद का संकलन है।

फवायद-उल फुआद रज़िया सुल्तान के तख्तापलट में नूर तुर्क की भूमिका को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करती है। इसके विपरीत मिन्हाज रज़िया को गद्दी से हटाने में नूर-तुर्क की भूमिका का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। एक अन्य महत्वपूर्ण *मलफूज़ात सुरूर-अस सुदूर* था जो शेख हमीदुद्दीन नाग़ौरी और उनके पोते फरीदुद्दीन महमूद के मध्य संवाद है। यह शेख हमीदुद्दीन नाग़ौरी के प्रति मुहम्मद बिन तुगलक की गहरी श्रद्धा को प्रकाश में लाता है। एक अन्य महत्वपूर्ण *मलफूज़ात* हमीद कलंदर की *खैर-उल मजालिस* है, जो शेख नसीरूद्दीन चिराग के वार्तालाप का संग्रह है। यह समाज और अर्थव्यवस्था के प्रति चिश्तियों के बदलते रवैये का एक संजीव लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। अन्य महत्वपूर्ण *मलफूज़ातों* में शेख बुरहानुद्दीन ग़रीब (*एहसान-उल अक़्वाल*) के संवाद और सैय्यद मुहम्मद गेसू दराज़ (*जवामी-उल कलम*) का *मलफूज़ात* छोटे शहरों में चिश्ती सूफ़ी केन्द्रों के प्रसार को दर्शाता है। एक और महत्वपूर्ण *मलफूज़ात* शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोही द्वारा लिखी गई जो उनके पीर रूदोली के शेख अहमद अब्दुल हक़ के संवाद पर है।

मक़तूबात सूफ़ी शिक्षकों के पत्र/पत्राचार हैं, जिनके माध्यम से वे अपने शिष्यों से दूर रहकर भी उन्हें प्रशिक्षित किया करते थे। यह उनके शिष्यों द्वारा विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करने संबंधी निर्देशों पर केन्द्रित हैं। इन *मक़तूबातों* में अब्दुल कुद्दूस गंगोही, शेख अहमद सरहिन्दी, शाह वलीउल्लाह और ख्वाजा मासूम के *मक़तूबात* सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत सूफियों की जीवनियाँ हैं। हालांकि, उन्हें आलोचनात्मक रूप से देखा जाना चाहिए क्योंकि अक्सर उनमें अपने शिक्षक की प्रशंसा के लिए अतिरंजित वृत्तांत और चमत्कार, आदि शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए, अमीर खुर्द के शेख फरीदुद्दीन गंज-ए शकर के बारे में वृत्तांत में कालांतर में अनेक चमत्कारी कहानियाँ शामिल कर दी गईं और अन्त में अली असग़र चिश्ती के *जवाहिर-ए फरीदी* में ऐतिहासिक सत्य को ढूंढ़ना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार सूफ़ी साहित्य का विश्लेषण करते समय स्रोत की सावधानीपूर्वक जाँच-पड़ताल और सम्बन्धित लेखक की पृष्ठभूमि को जानने की आवश्यकता है।

1.8 अरब यात्रियों के वृत्तांत

दिल्ली सल्तनत में फारसी राज्य की भाषा थी इसलिए बड़े पैमाने पर साहित्य का निर्माण फारसी में किया गया था। हालांकि विद्वानों के बीच अरबी भाषा साहित्यिक लोगों की भाषा थी। इल्तुतमिश के शासनकाल से विशेष रूप से मंगोलों के खतरे के बाद, अरबी विद्वानों की एक बड़ी संख्या ईरान और मध्य एशिया से प्रवासन करती है और दिल्ली सुल्तानों का संरक्षण प्राप्त करती है। सुल्तान फिरोज़ तुगलक अरबी विद्वानों का महान् संरक्षक था। यहाँ तक कि उसने मजदुद्दीन फिरोज़ाबादी को एक अरबी शब्दकोश, *कामूस*, का संकलन करने का आदेश दिया था।

1.8.1 अरब भूगोलवेत्ताओं के वृत्तांत

मध्यकाल के शुरुआती यात्रा वृत्तांतों में सबसे पहले अरब भूगोलवेत्ताओं की कलम से लिखे गये हैं, कुछ ने स्वयं भ्रमण किया था और कुछ ने उन लोगों से जानकारी ली थी जिन्होंने भ्रमण किया था। भारत-अरब सम्बन्धों को तब काफी बढ़ावा मिला जब अल-मामून ने बगदाद में *बैत-उल हिकमा* की स्थापना की और इस प्रकार कई संस्कृत ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद करने की परियोजना की शुरुआत हुई, जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत और अरबी दोनों को जानने वाले विद्वानों की एक श्रृंखला का उदय हुआ जिसने भारतीय ज्ञान, संस्कृति और इतिहास में अभिरुचि को जन्म दिया। हमें भारत का वृत्तांत अल-मसूदी, इब्न खुर्दादबिह (मृत्यु 911; *किताब-उल मसालिक वल ममालिक*), सुलेमान ताज़िर (*अखबार-उस सिन्ध वल हिन्द*; 851) अल-इस्तखरी (951 में भारत का दौरा किया; उसकी *मसालिक वल ममालिक* भारत के बारे में, विशेषकर इसके भूगोल के बारे में और समकालीन सिन्ध का एक मानचित्र भी प्रदान करती है), और इसके अतिरिक्त इब्न हौकल (*सूरत अल-अर्ज*, 989; सिन्ध के नक्शे के साथ भारत के शहरों का आकर्षक विवरण प्रदान करती है) की रचनाओं में मिलता है। यह अरबी लेखन अल-बरूनी (973-1050) के लेखन में चर्मोत्कर्ष पर पहुँचता है जो ग़ज़ना के सुल्तान महमूद के साथ आया था। अपनी *किताब-उल हिन्द* में वह भारत का सुस्पष्ट विवरण प्रदान करता है।

अल-उमरी (मृत्यु 1348) हालांकि कभी भारत नहीं आया लेकिन भारत आने वाले यात्रियों की रचनाओं के आधार पर अपनी *मसालिक-उल अबसार फी ममालिक इल-अमसार* में भारत के बारे में विवरण प्रदान करता है। मुहम्मद बिन अब्दुर रहीम (*तुहफात-उल अलबाब*) के विवरण के आधार पर वह भारत की 'एक विशाल देश, उच्च न्याय व्यवस्था, धनाढ्यता, सशक्त प्रशासन, जीवन की सतत् आवश्यकताओं की उपलब्धि और सुरक्षा व्यवस्था की प्रंशसा करता हैं...भारतीय दर्शन, चिकित्सा, गणित और विशिष्ट शिल्पकलाओं में निपुण थे...' (ज़की 2009: 6)। वह भारत के शहरों तथा प्रांतों, विशेषकर दिल्ली और देवगीर, मुहमद बिन तुगलक की नवीन राजधानी, जिसे वह *कुब्बत-उल इस्लाम* कहता है, की विस्तृत चर्चा करता है। सिराजुद्दीन अबुल सफा उमर अश शिब्ली के विवरण के आधार पर उसके द्वारा वर्णित भारत की डाक व्यवस्था के विवरण को इब्न बतूता द्वारा वर्णित विवरण के बाद प्रमुख माना जाता है। अरब वृत्तातों में सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के प्रति विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है। दिलचस्प बात यह है कि, भारतीय वृत्तांतकारों की तुलना में मुहम्मद तुगलक को उनकी 'असीम उदारता, व्यापक शैक्षणिक और बौद्धिक उपलब्धियों और प्रशासनिक प्रतिभा के लिए' अरब वृत्तांतकारों की कलम से व्यापक प्रशंसा मिली (ज़की 2009:VI)। अल-उमरी, शेख मुबारक के वृत्तांत के आधार पर लिखता है कि 'सुल्तान की उदारता और परोपकारिता के कार्य ऐसे हैं कि उनका उल्लेख दुनियाँ के अच्छे कामों के रिकॉर्ड के पन्नों पर होना चाहिए...' (ज़की 2009: 32)। वह आगे टिप्पणी करता है कि 'कोई भी सुसज्जित होकर सोने से जड़ित या नक्काशी

किये हुए घोड़े की जीन के साथ सवारी नहीं कर सकता था सिवाय उनके जिन्हें स्वयं सुल्तान ने उन्हें दिया था' (ज़की 2009: 40)।

1.8.2 इब्न बतूता

इब्न बतूता (1304-1369) एक मोरोक्कन यात्री था। यह वृत्तांत एक अफ्रीकी-एशियाई परिप्रेक्ष्य के साथ सल्तनत की हमारी समझ को व्यापक बनाता है। वह उत्तर-पश्चिमी प्रवेशद्वार से 1333 में भारत आया और 1344 में उसने भारत छोड़ा। उसने न केवल बड़े पैमाने पर भारत के विभिन्न क्षेत्रों की यात्राएँ कीं, बल्कि मुहम्मद बिन तुगलक के तहत् सात वर्षों की लम्बी अवधि तक दिल्ली के *काज़ी* का प्रमुख पद भी संभाला। इब्न बतूता का *रिहला* मुहम्मद बिन-तुगलक के काल के न्यायिक, राजनैतिक, सैन्य-संस्थाओं, कृषि-उत्पादों (इसमें आम और पान का विशेष उल्लेख है), व्यापार, नाप-तौल की पद्धतियों, सीमा-शुल्क और लोगों के दस्तूर और आचार-विचारों पर बहूमूल्य रोशनी डालता है। मुहम्मद तुगलक के राजधानी स्थानांतरण, उसका विनाशकारी कराचील अभियान और अकालों की भीषणता का विस्तृत विवरण इब्न बतूता द्वारा दिया गया है। एक और दिलचस्प वर्णन, जो अन्यथा हमारे लिए उपलब्ध नहीं है, वह है प्रभावी डाक-प्रणाली का उनका विवरण और उसकी प्रशंसा। वह वर्णन करते हैं:

> भारत में डाक दो प्रकार की होती है। हर चार मील दूरी पर तैनात शाही घोड़ों द्वारा घोड़ा-डाक, *उलक*, चलती है। पैदल डाक के प्रति मील तीन अड्डे (स्टेशन) होते हैं; इसे दावा कहते है, यानि एक तिहाई मील ... यह पैदल डाक घोड़ा-डाक से तेज है और अक्सर इसका उपयोग खुरासान के फलों के परिवहन के लिए किया जाता है ... इसी तरीके से कुख्यात अपराधियों को लाया ले जाया जाता है; इसी प्रकार सुल्तान के उपयोग के लिए पानी गंगा से दौलताबाद तक ले जाया जाता है ... जो चालीस दिनों की यात्रा की दूरी पर है।
>
> ***रिहला* 1976: 3.4**

हालांकि इब्न बतूता का वर्णन राजनैतिक और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता है लेकिन इसकी सच्चाई को स्वीकार करने में सावधानी बरतने की जरूरत है। इब्न बतूता वर्णन करता है कि 'सुल्तान के खिलाफ सबसे गंभीर आरोपों में से एक यह है कि उसने दिल्ली के निवासियों को दिल्ली छोड़ने का आदेश दिया ... जब सुल्तान ने ऐसा किया था तो दिल्ली के सभी निवासी अपनी संपत्ति और सामान छोड़कर बाहर आ गए और शहर एक रेगिस्तान बनकर रह गया' (*रिहला* 1976: 94)। लेकिन इब्न बतूता के विवरण की पुष्टि अभिलेखीय साक्ष्यों से नहीं होती है। 1327 और 1328 के संस्कृत अभिलेखों में से दो (**उपभाग 1.6.1** में विस्तार से चर्चित) दर्शाते हैं कि सामान्य जन (व्यापारी, आदि) आमतौर पर इससे प्रभावित नहीं हुए थे और ज़िया बरनी सही तर्क देता है कि इसने 'उच्च वर्गों' के बड़े भाग को विस्थापित कर दिया था।

बोध प्रश्न-4

1) *मलफूज़ात* क्या हैं?

.....

.....

.....

2) क्या आप सहमत हैं कि आम आदमी की जिन्दगी पर प्रकाश डालने के लिए *मलफूज़ात* महत्वपूर्ण स्रोत हैं?

.....

.....

.....

3) इतिहास लेखन के क्षेत्र में इब्न बतूता के योगदान की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

1.9 संस्कृत साहित्य

सामान्य तौर पर माना जाता है कि राजकीय संरक्षण के अभाव के कारण सल्तनत युग में संस्कृत साहित्य के स्तर में गिरावट आई। यद्यपि यह सही है कि राजभाषा के रूप में संस्कृत का स्थान फारसी ने ले लिया था, लेकिन संस्कृत साहित्यिक रचनाओं के सृजन में संख्या की दृष्टि से कोई कमी नहीं आई। यह युग संस्कृत भाषा की विभिन्न शाखाओं में बड़ी संख्या में साहित्यिक रचनाओं के लिए महत्वपूर्ण है, जैसे – *काव्य* (कवितामय वृत्तान्त), धर्म और दर्शन शास्त्र, व्याकरण, नाटक, कहानियाँ, चिकित्सा विज्ञान, खगोल विज्ञान, विधि ग्रंथों पर टीका-टिप्पणियाँ और सार संग्रह तथा अन्य पारंपरिक संस्कृत रचनाएँ। न ही संस्कृत (*धर्मशास्त्रों*) के लिए राजकीय संरक्षण का अभाव था, क्योंकि अभी भी कई राजा संस्कृत कवियों को संरक्षण देते थे – विशेष रूप से दक्षिण भारत और राजस्थान में। यद्यपि बड़ी संख्या में संस्कृत रचनाएँ लिखी गईं, इन रचनाओं के स्तर में गिरावट के स्पष्ट चिह्न मौजूद थे। गिरावट की यह प्रक्रिया सल्तनत की स्थापना से पूर्व ही आरंभ हो गई थी जो सल्तनत युग में अधिक स्पष्ट हो गई। इस युग की अधिकांश संस्कृत रचनाओं में मौलिकता का अभाव था। अधिकतर संस्कृत कृतियाँ नीरस, आवृत्तिमूलक तथा कृत्रिम थीं। धार्मिक विषयों पर लिखी संस्कृत रचनाएँ अक्सर अलौकिक चिंतन युक्त थीं। जीवन-संबंधी रचनाएँ मुख्यतः वीरोचित गाथाओं के रूप में थीं जिनमें सन्तचरितात्मक विवरणों और प्रणय गाथाओं की भरमार थी। संस्कृत ने नये फारसी भाषी शासक वर्ग का संरक्षण खो दिया। परंतु सल्तनत ने संस्कृत साहित्यिक रचनाओं के स्वतंत्र सृजन में हस्तक्षेप नहीं किया। वास्तव में, सल्तनत युग के दौरान कागज के प्रचलन ने प्राचीन संस्कृत रचनाओं जैसे – *रामायण* और *महाभारत* के पुनर्सृजन और प्रचार जैसे कार्यों को तीव्र कर दिया।

संस्कृत साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन में दक्षिण भारत, बंगाल, मिथिला और पश्चिमी भारत अग्रणीय रहे। विजयनगर के राजाओं ने संस्कृत कवियों को संरक्षण प्रदान किया। पश्चिम भारत के जैन विद्वानों ने भी संस्कृत साहित्य के विकास में योगदान दिया। पश्चिम भारत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण जैन विद्वान हेमचंद्र सूरी थे, जिनका संबंध 12वीं शताब्दी से था। उत्तरी बिहार में मिथिला भी संस्कृत के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। बाद में, सल्तनत युग के अंत में और मुगल काल के दौरान, बंगाल और ओडिशा में चैतन्य आंदोलन ने विभिन्न क्षेत्रों में संस्कृत रचनाओं के प्रकाशन में योगदान दिया, जैसे – नाटक, ***चम्पू*** (गद्य व पद्य का मिश्र रूप), व्याकरण, इत्यादि।

संस्कृत कवियों को कई राजपूत राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। इन कवियों ने संस्कृत प्रशस्ति की शास्त्रीय विधा में अपने संरक्षकों के वंशों का इतिहास लिखा। इस प्रकार के वंशीय या कुटुम्ब इतिहास ने एक निश्चित सूत्र का अनुकरण किया जो उस काल में एक स्थापित प्रवृत्ति का रूप धारण कर चुका था। इन संस्कृत रचनाओं में से कुछ जैसे – *पृथ्वीराज विजय* और *हम्मीर महाकाव्य* प्रसिद्ध हैं। मुस्लिम शासकों पर कई ऐतिहासिक कविताएँ जैसे – गुजरात के सुल्तान महमूद बेगड़ा की जीवनी राजविनोद उसके दरबारी कवि उदयराज द्वारा लिखी गई। कश्मीर के राजाओं के इतिहास सें संबंधित कल्हण की *राजतरंगिणी* (12वीं शताब्दी) के बाद सल्तनत युग में जोनराज द्वारा द्वितीय *राजतरंगिणी* की रचना की गई जिसमें जयसिम्ह से सुल्तान ज़ैन-उल आबिदीन (1420-1470) तक के कश्मीर शासकों का इतिहास शामिल है। श्रीवर द्वारा तृतीय *राजतंरगिणी* की रचना की गई जिसमें 1486 सी ई तक के कश्मीर के इतिहास का वर्णन है। इन सभी रचनाओं में उनके संरक्षकों का प्रशस्तियुक्त गुण-गान है, परंतु उनमें उपयोगी ऐतिहासिक तथ्य भी सम्मिलित हैं। इन ऐतिहासिक *काव्यों* के अतिरिक्त, बड़ी संख्या में अर्द्ध-ऐतिहासिक रचनाएँ, ***प्रबन्ध*** भी लिखी गईं। ये प्रबंध काल्पनिक और संतचरित लेखन से परिपूर्ण थे। परन्तु, उनमें से कुछ जैसे – मेरुतुंग द्वारा रचित *औरबंधआकाश चिंतामणि* और राजशेखर के *प्रबंधकोष* में ऐतिहासिक महत्व की जानकारी है। तथापि, कुल मिलाकर, बड़ी संख्या में प्रकाशित सल्तनतयुगीन संस्कृत साहित्य अपनी मौलिक ओजस्विता और सृजनशीलता खो चुका था और इस साहित्य का अधिकांश हिस्सा उस काल की बौद्धिक प्रगति से अछूता रहा।

संस्कृत कृतियों का फारसी अनुवाद

अमीर खुसरो के अभिनव प्रयासों के फलस्वरूप उस युग के भारतीय समाज में साहित्यिक और सांस्कृतिक संश्लेषण की परम्परा स्थापित हुई। फारसी और संस्कृत में आदान-प्रदान की प्रक्रिया में

वृद्धि हुई। कई संस्कृत रचनाओं का अरबी व फारसी में अनुवाद प्रारंभ हुआ। ज़िया नख्शबी (मृत्यु 1350) प्रथम विद्वान था जिसने संस्कृत कहानियों का फारसी में अनुवाद किया। उसका *तूतीनामा,* एक संस्कृत कृति पर आधारित है। फिरोज़ शाह तुगलक और सिकंदर लोदी के शासनकाल में कई संस्कृत रचनाओं का फारसी में अनुवाद किया गया। 15वीं शताब्दी में कश्मीर के प्रसिद्ध शासक ज़ैन-उल आबिदीन ने *महाभारत* और कल्हण की *राजतंरगिणी* का संस्कृत से फारसी में अनुवाद करवाया। इससे यह प्रतीत होता है कि सल्तनत काल के अंत तक ऐसे कई विद्वान थे जिन्हें संस्कृत व फारसी दोनों का ज्ञान था और जो हिन्दू और इस्लाम धर्मों के विचारों से परिचित थे। तथापि, संस्कृत जानने वाले गैर-मुस्लिम विद्वानों द्वारा फारसी और अरबी साहित्यिक रचनाओं को संस्कृत में अनुदित करने का बहुत कम प्रयास किया गया। ब्राह्मण-विद्वानों की विचारों के इस आदान-प्रदान में नगण्य भूमिका उनकी संकीर्ण मनोवृत्ति को इंगित करती है जिसकी तरफ पहले अल-बरूनी ने 11वीं शताब्दी में ध्यान दिलाया था। अन्य संस्कृतियों और भाषाओं के विचारों के प्रति ग्रहणशीलता की इस कमी को आंशिक रूप से उस काल के संस्कृत साहित्य के स्तर में गिरावट के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उस युग की भाषाओं में फारसी का महत्वपूर्ण स्थान था। यह राजभाषा और सल्तनतयुगीन कुलीन वर्ग की भाषा थी। इसके साथ कई नए और स्फूर्तिदायक सामाजिक और धार्मिक विचार हिंदुस्तान में आए। भारत में इनके प्रचलन ने यहाँ के कवियों, चिंतकों और समाज-सुधारकों के बौद्धिक चिंतन की सीमा को विस्तृत बना दिया। इन सबसे बढ़कर इसने साहित्य की नई विधाओं और शैलियों को प्रचलित किया।

1.10 क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य

इस युग के साहित्यिक इतिहास की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक, भारत के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का विकास था। उत्तर भारत में, इस काल में शीघ्र विकसित होने वाली भाषाओं में हिंदी, पंजाबी, बंगाली, असमी, उड़िया, मराठी और गुजराती शामिल थीं।

इनमें से प्रत्येक भाषा की उत्पति उसके अनुरूप की इण्डो-आर्य प्राकृत की अपभ्रंश अवस्था से हुई है। यह उत्पत्ति 7वीं-8वीं शताब्दी में देखी जा सकती है। तीन दक्षिण भारतीय भाषाओं – तमिल, कन्नड़ और तेलुगु – का साहित्यिक इतिहास, उत्तर भारतीय प्रादेशिक भाषाओं से अधिक प्राचीन है। तमिल भाषा का साहित्यिक इतिहास सामान्य युग के प्रारंभिक काल तक जाता है। कन्नड़ और तेलुगु की साहित्यिक परंपराएँ भी उत्तर भारतीय प्रादेशिक भाषाओं से प्राचीन हैं। दक्षिण भारतीय भाषाओं से सबसे नवीन मलयालम है और एक स्वतंत्र साहित्यिक भाषा के रूप में इसका विकास 14वीं शताब्दी से पूर्व तक नहीं हुआ था।

1.10.1 क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की सामाजिक पृष्ठभूमि

इस युग में क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित थे :

i) उत्तर-गुप्त काल में, लगभग 7वीं-8वीं शताब्दी से, 'सामंतवादी' समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति की प्रगति के फलस्वरूप क्षेत्रीय सत्ता और संस्कृति का आविर्भाव हुआ। क्षेत्रीयवाद के विकास का एक परिणाम, अपभ्रंश से क्षेत्रीय भाषाओं के प्रारंभिक रूपों की उत्पत्ति था।

ii) जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, संस्कृत साहित्य की गुणवत्ता में कमी दिल्ली सल्तनत की स्थापना से बहुत पहले ही प्रारंभ हो गई थी। 10वीं-11वीं शताब्दियों में प्रकाशित संस्कृत साहित्य अधिकांशतः स्वाभाविकताहीन था और आमजन को अपनी ओर आकर्षित करने में असफल रहा। सल्तनत युग में राज भाषा के रूप में संस्कृत का प्रतिस्थापन फारसी द्वारा किए जाने से संस्कृत साहित्य के पतन की प्रक्रिया और भी तीव्र हो गई। केन्द्र में इसको प्राप्त राजकीय संरक्षण के समाप्त होते ही कई राज्यों ने क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा दिया क्योंकि फारसी भारत के कई भागों में एक अपरिचित भाषा थी। कई राज्यों में, प्रशासकीय कार्यों हेतु, तुर्कों से पहले भी, संस्कृत के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग प्रचलित था। दिल्ली सुल्तानों के शासन काल में, कई प्रदेशों में, स्थानीय स्तर पर 'हिंदी' जानने वाले राजस्व अधिकारियों का उल्लेख मिलता है।

iii) 13वीं शताब्दी में तुर्कों द्वारा उत्तर भारत की विजय से राजपूत-ब्राह्मण गठबंधन का अंत हो गया। फलस्वरूप, समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव कम हो गया; इससे संस्कृत-भाषा की प्रमुखता को धक्का पहुँचा और क्षेत्रीय भाषाओं ने, जो स्थानीय स्तर पर लोकप्रिय थीं; प्रमुखता प्राप्त की।

iv) गैर-ब्राह्मणवादी और परंपरावादी नाथपंथी आंदोलन और बाद में विभिन्न भक्ति आंदोलनों – अनुसारक (comformist) और उग्र एकेश्वरवादी, दोनों – ने क्षेत्रीय साहित्य के तीव्र विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन आंदोलनों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की हम **इकाई 14** में भक्ति आंदोलन के अंतर्गत अध्ययन करेंगे। नाथपंथी आंदोलन की उत्पत्ति से पूर्व, उनके पूर्ववर्तियों – बौद्ध सिद्धों – का अधिकांश साहित्य क्षेत्रीय भाषाओं में, जिसमें हिंदी भी सम्मिलित थी, रचा गया। नाथपंथी आंदोलन, जिसने सर्वप्रथम ब्राह्मणवाद के घटते प्रभाव से लाभ उठाया और जो 13वीं और 14वीं शताब्दी में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा, ने लोकप्रिय क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। 15वीं शताब्दी के उपरांत उत्तर भारत में भक्ति आंदोलनों की प्रगति ने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और इन भाषाओं में साहित्य की विविध विधाओं को विकसित करने में अत्यंत प्रभावशाली योगदान दिया। भक्ति आंदोलन के संत अपने छंदों की रचना आम बोलचाल की भाषा में करते थे, जिससे वे लोगों में बहुत लोकप्रिय थे। वे लोकप्रिय मुहावरों, दंत-कथाओं और लोक-कथाओं का प्रयोग करते थे। भक्ति आंदोलन ने एक आम तरीके से लोकप्रिय प्रादेशिक भाषाओं के विकास में योगदान दिया। भक्ति संतों ने, विशेष रूप से जिनका संबंध भक्ति आंदोलन की पारंपरिक धारा से था, महाकाव्यों, पुराणों और *भागवत् गीता* का अनुवाद संस्कृत से क्षेत्रीय भाषाओं में किया, जिससे आम लोग उन्हें पढ़ सकें। इस तरह से, भक्ति कवियों ने संस्कृत की विभिन्न कृतियों से भक्ति प्रसंग लेकर उनको लोकप्रिय बनाया। इन कृतियों के पाठों का न केवल क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया गया बल्कि उन्हें सरल तरीके से, लोगों के समझने हेतु, प्रस्तुत किया गया।

1.10.2 उत्तर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य

इस भाग में हम उत्तर भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में लिखी गई साहित्यिक कृतियों के बारे में विचार करेंगे।

हिंदी साहित्य का विकास

आज हम जिस हिंदी को जानते हैं, उसका विकास मध्यकालीन भारत में विविध रूपों में हुआ। हिंदी की उप-भाषाओं में, ब्रज भाषा, अवधी, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी, मालवी, इत्यादि सम्मिलित थीं। हमारे अध्ययन के युग में हिंदी भाषा का साहित्य इन्हीं उप-भाषाओं में विकसित हुआ। इन उप-भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी का मिश्रित रूप खड़ी बोली, जिसका अर्थ अपरिष्कृत बोली था, भी विकसित हो रही थी।

प्रथम चरण

विद्वानों ने हिंदी की उत्पत्ति का समय 7वीं और 10वीं शताब्दियों के मध्य बताया है – इस काल में ही अपभ्रंश से हिंदी विकसित हो रही थी। 7वीं-8वीं शताब्दियों और 14वीं शताब्दी (भक्ति कविता की उत्पत्ति से पूर्व) के मध्य के युग को विद्वानों द्वारा 'वीर-गाथा काल' कहा जाता है। इस युग को *आदिकाल* (प्रारंभिक-युग) भी कहा जाता है। इस काल की अधिकतर काव्य-रचना भाटों द्वारा की गई, जिन्हें विभिन्न राजपूत शासकों का संरक्षण प्राप्त था। भाट अपने मालिकों के शौर्य व पराक्रम का बढ़-चढ़ कर बखान करते थे। वे अपने काव्यात्मक वृत्तान्तों में प्रेम के पहलू को भी महत्ता देते थे। संक्षेप में, यह साहित्य, राजपूत शासक-वर्ग के नैतिक मूल्यों और दृष्टिकोण का परिचायक था। इस साहित्य के रचयिता, भाटों का आम जनता की आकांक्षाओं से कोई सरोकार नहीं था। इनकी अधिकांश काव्य-रचनाएँ, हिंदी की उप-भाषा राजस्थानी में रची गई थीं। इनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध *पृथ्वीराज रासो* है जिसकी रचना का श्रेय दिल्ली के अंतिम राजपूत नरेश पृथ्वीराज के राजकवि चन्दबरदाई को दिया जाता है। अन्य वीर-काव्यों में *बीसल देव रासो, हम्मीर रासो, खुमान रासो,* इत्यादि सम्मिलित हैं। अपने वर्तमान रूपों में, अधिकांशतः *रासो* वृत्तान्तों की प्रामाणिकता संदेहों के घेरे में है और ऐसा प्रतीत होता है कि बाद की शताब्दियों में उनमें विस्तार किया गया। उदाहरण

के लिए, इस काल (12वीं शताब्दी) में पृथ्वीराज रासो की केवल मुख्य कहानी लिखी गई थी, और कालांतर में इसमें क्षेपक जोड़े गए।

7वीं-8वीं शताब्दियों और 14वीं शताब्दी के मध्य का सम्पूर्ण हिंदी साहित्य भाट-काव्य शैली का नहीं था। बौद्ध सिद्धों और बाद में नाथपंथी योगियों ने हिंदी के आद्यरूप में धार्मिक-काव्य की रचना की। पश्चिम भारत में, जैन विद्वानों ने राजस्थानी में धार्मिक काव्य की रचना की, जिसमें लोगों के धार्मिक और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण था। फारसी साहित्य में अमीर खुसरो के योगदान का वर्णन किया जा चुका है परन्तु उसने हिंदी के मिश्रित रूप में काव्य.रचना की जो अंततः *खड़ी बोली* या *हिन्दुस्तानी* में विकसित हुई। उसने इसे हिंदवी नाम दिया। उसके कुछ हिंदी छंद उसकी कृति खालिक *बारी* में पाये जाते हैं, जिसका श्रेय उसे दिया जाता है परन्तु जो संभवतः बहुत बाद में लिखी गई थी।

द्वितीय चरण : भक्ति कविता का युग

हिंदी-साहित्य की उन्नति का दूसरा काल 14वीं-15वीं शताब्दियों से प्रारंभ हुआ। भक्ति आंदोलन की विभिन्न धाराओं का, उस काल के हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्य के इस काल को *भक्ति* काल कहा गया है जो मुगल काल तक जारी रहा। यह युग जो कबीर से प्रारंभ हुआ, हिंदी साहित्य के बहुत अधिक फलन-फूलने का युग था। इस काल के भक्त कवि दो प्रकार के थेः सगुण कवि (जो मानवीय रूप और लक्षणों युक्त ईश्वर में विश्वास करते थे) और *निर्गुण* कवि (जो अमूर्तवादी परम ईश्वर में विश्वास करते थे)। कबीर निर्गुण भक्त कवियों के अगुआ थे, जिनमें से अधिकांश समाज के कमजोर वर्ग से थे एवं निर्धन और निरक्षर थे। कबीर की अपनी मातृ-भाषा भोजपुरी थी परन्तु उन्होंने मिश्रित बोली में अपनी रचनाएँ लिखीं, जिसे उत्तर भारत के विभिन्न भागों के लोग समझ सकते थे। कबीर की भाषा का एक विशेष लक्षण 'सधुक्कड़ी' कहलाता है। कबीर और अन्य *निर्गुण* संतों के गैर-परम्परावादी और रूढ़ि-विरोधी विचारों का वर्णन भक्ति आंदोलन की **इकाई** (**14**) में किया जायेगा। साहित्यिक दृष्टि से कबीर की भाषा-शैली की विशेषता यह है कि इसमें अक्खड़पन के साथ ज्ञान और गूढ़ तथ्यों का समावेश था। उन्होंने अपने कठोर और तीखे छंदों का प्रयोग विभिन्न कर्मकाण्डों की भर्त्सना करने में किया। कबीर की काव्य शैली के छोटे-छोटे दोहों की अन्य विशेषता, उनमें *उलटबासी* या 'उलट-पुलट' भाषा का प्रयोग है, जिसमें पहेलियों और विरोधाभासों की श्रृंखला होती थी। ऐसा माना जाता है कि कबीर को *उलटबासी* की परम्परा, नाथपंथियों से प्राप्त हुई, जिसका उन्होंने प्रभावशाली ढंग से अलंकारिक और शिक्षात्मक साधन के रूप में प्रयोग किया। कबीर और अन्य 'कमज़ोर वर्ग' के एकेश्वरवादी कवियों (सेन, पीपा, धन्ना, रैदास, इत्यादि) ने मौखिक शैली में अपने विचार व्यक्त किए। उनका काव्य मौखिक साहित्य का हिस्सा है। उनके दोहों का संकलन बहुत बाद में हुआ – लिखित रूप से उनकी रचनाओं का सर्वप्रथम दृष्टांत हमें 1604 के आदि ग्रंथ से मिलता है। निरक्षर होने की वजह से उनका संस्कृत साहित्य से कोई सीधा सम्पर्क नहीं था। उन्होंने अपने भावों को स्थानीय लोगों की भाषा में व्यक्त किया। अपने अधिकांश भावों को जिस साहित्यिक शैली में उन्होंने छोटे पदों में रखा, वे दोहे कहलाए। संक्षेप में, कबीर और अन्य 15वीं शताब्दी के *निर्गुण* संतों की काव्य रचनाओं ने हिंदी जैसी देशज भाषा को एक 'साहित्यिक' भाषा में रूपांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उत्तर भारत के परंपरागत वैष्णव भक्ति आंदोलन से संबंधित कवि अधिकतर ब्राह्मण थे और वे ब्राह्मण धर्मग्रंथों व संस्कृत-पाठों से परिचित थे। वैष्णव कवि एक वैयक्तिक ईश्वर के प्रति भक्ति की धारणा में विश्वास करते थे, और उसी के अनुसार वे राम-भक्तों और कृष्ण-भक्तों में बंट गए। हिंदी में राम भक्ति काव्य ने मुख्य रूप से मुगल काल में समृद्धि प्राप्त की। इसके सबसे प्रमुख प्रतिनिधि कवि और संभवतः हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास (1532-1623) थे, जिन्होंने हिंदी की अवधी बोली में प्रसिद्ध, *रामचरितमानस* की रचना की। कृष्ण-भक्त कवियों में, विद्यापति ने मैथिली हिंदी में राधा और कृष्ण के प्रेम से संबंधित छंदों की रचना की। उनके प्रगीतात्मक काव्य का प्रभाव बंगाल पर हुआ और कुछ बंगाली कवियों ने उनके गीतों का अनुकरण किया। सल्तनत काल के अंत तक मथुरा के निकट वृन्दावन, वैष्णव भक्ति कविता के केन्द्र के रूप में उभरा। ये कवि कृष्ण-भक्त थे और इन्होंने अपने छन्दों की रचना ब्रज-भाषा में की। इनमें से सबसे प्रमुख कवि सूरदास (*c.*1483-1563) थे। वैष्णव भक्ति-काल में एक अन्य प्रमुख नाम मीरा बाई (c.1498-1543) का था।

वह कृष्ण-भक्त थीं और अपने गीतों की रचना राजस्थानी में किया करती थीं, परन्तु इनमें से अधिकांश गीतों को कालांतर में अन्य हिंदी उप-भाषाओं और गुजराती में समाविष्ट कर दिया गया।

हिंदी साहित्य में सूफ़ी योगदान

इस युग के सूफ़ी संतों और विद्वानों ने हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चिश्ती सूफियों ने समा (भाव-विभोर गायन और नृत्य) बैठकों में भक्तिमय हिंदी गीतों का प्रयोग किया। विभिन्न हिन्दी शब्दों जैसे 'गोपी' 'रासलीला', आदि की सूफ़ी मतानुसार और अन्योक्तिपरक व्याख्या की गयी। सूफ़ी कवियों ने इस्लामी रहस्यवाद तथा भारतीय प्रेम कथाओं, लोकप्रिय दन्त-कथाओं और कहानियों को मिलाकर रचनाएँ कीं। मुल्ला दाउद द्वारा रचित चंदायन (1379 में लिखी गई) ऐसी काव्य-रचनाओं में सर्वप्रथम है। कुतुबन की *मृगावती* (1501 में रचित), हिंदी में रहस्यवादी भावप्रवण काव्य की एक अन्य कृति है। 1540 में अवधी हिंदी में मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत अन्योक्तिपरक साहित्य का श्रेष्ठ नमूना है। सूफ़ी कवियों की साहित्यिक रचनाओं के फलस्वरूप हिंदी साहित्य में कई अरबी और फारसी शब्दों का समावेश संभव हुआ और इससे सांस्कृतिक और साहित्यिक संश्लेषण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

उर्दू भाषा की उत्पति और विकास

विद्वानों ने दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद के युग में, उर्दू भाषा की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत प्रतिपादित किए हैं। हिंदी की एक उप-भाषा की पहचान के संदर्भ में कई मत हैं, इस पर फारसी तत्व के प्रभाव के फलस्वरूप एक नई भाषा का जन्म हुआ। जिन उप.भाषाओं का उल्लेख हुआ, उनमें ब्रजभाषा, हरियाणवी और दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली अन्य बोलियाँ और पंजाबी भाषा हैं। इन सभी उप-भाषाओं का अपनी प्रारंभिक अवस्था में उर्दू भाषा पर प्रभाव पड़ा और यह कहना मुश्किल है कि किस उप-भाषा के साथ फारसी के मिलाप से उर्दू का जन्म हुआ। तथापि, यह सुस्पष्ट है कि 14वीं शताब्दी के अंत तक उर्दू एक स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रकट होना शुरू हुई। हिंदी के समान, उर्दू की मूल संरचना खड़ी बोली पर आधारित थी – दिल्ली व उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाने वाली उप-भाषाओं का मिश्रण। इस युग में, एक संश्लेषणात्मक भाषा के विकास के लिए दिल्ली की एक आदर्श स्थिति थी, क्योंकि एक तरफ, यह विभिन्न उप-भाषाओं को बोलने वाले लोगों से घिरी थी, और दूसरी तरफ वहाँ फारसी-भाषी कुलीन शासक वर्ग था। इस प्रकार उर्दू ने फारसी साहित्यिक परम्परा को अपनाते हुए हिंदी उप-भाषाओं की मूल संरचना को समाविष्ट किया और अपनी स्वयं की विशिष्टता विकसित की।

उर्दू शब्द की उत्पत्ति तुर्की भाषा से है और इसका शाब्दिक अर्थ सेना अथवा कैम्प है। अपनी प्रारंभिक अवस्था में, उर्दू का प्रयोग एक कामचलाऊ भाषा के रूप में, फारसी बोलने वाले तुर्क शासक वर्ग और सैनिकों द्वारा स्थानीय लोगों, जिनमें हाल ही में इस्लाम स्वीकार करने वाले भी थे, के साथ सम्पर्क हेतु हुआ। तथापि, इसने अभी एक साहित्यिक भाषा का रूप प्राप्त नहीं किया था। इस नई आम भाषा को एक मूर्त रूप प्राप्त करने में एक शताब्दी का समय लगा और इसे अमीर खुसरो ने '*हंदवी*' नाम दिया। खुसरो ने अपने छंदों की रचना *हिंदवी* (फारसी लिपि का प्रयोग करते हुए) में की और इस प्रकार उर्दू साहित्य की नींव रखी। तथापि, सर्वप्रथम दक्खन में उर्दू ने एक मानकीकृत साहित्यिक भाषा का दर्जा प्राप्त किया और वहाँ 15वीं शताब्दी में यह दक्खनी के नाम से जानी जाती थी। यह सर्वप्रथम बहमनी शासन काल में विकसित हुई और कालांतर में बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों में फली-फूली। गेसू दराज की *मिराज-उल आशिकीन*, दक्खनी उर्दू की सबसे प्रारंभिक रचना है। 18वीं शताब्दी तक, उर्दू कई नामों में जानी जाती थी जैसे 'हिंदवी' 'दक्खनी', 'हिन्दुस्तानी' या 'रेखता' (कई भाषाओं को मिलाकर नई भाषा पैदा करना)। दक्खनी उर्दू अपने परिष्कृत रूप में उत्तर भारत वापस पहुंची और शीघ्र ही इसने मुगल काल में लोकप्रियता प्राप्त की। 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन के समय उर्दू साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर था।

पंजाबी साहित्य

13वीं शताब्दी के प्रारंभ से 16वीं शताब्दी के प्रारंभ के मध्य में पंजाबी साहित्य के इतिहास में दो सुस्पष्ट प्रवृत्तियाँ सामने आईं। एक तरफ उस युग में सूफ़ी और भक्ति काव्य और दूसरी तरफ वीर. गाथाओं और लोक-साहित्य का ज़ोर था। प्रसिद्ध चिश्ती सूफ़ी बाबा फरीद (शेख फरीदुद्दीन गंज

शकर, *c.*1173-.1265) द्वारा रचित सूफ़ी काव्य रचनाओं ने पंजाबी भाषा के काव्य संसार में अग्रणीय योगदान दिया। 16वीं शताब्दी में गुरु नानक द्वारा रचित भजनों ने इस भाषा को एक निश्चित साहित्यिक रूप प्रदान किया। द्वितीय सिख गुरु, अंगद द्वारा पंजाबी को एक स्पष्ट गुरुमुखी लिपि प्रदान की गई। गुरु नानक द्वारा रचित भजनों को बाद में 5वें सिख गुरु अर्जन द्वारा 1604 में *आदि ग्रंथ* में सम्मिलित किया गया। उनकी काव्य रचना की विशिष्टता, भावों की शुद्धता और उनकी शैली और पद-योजना में विविधताओं में निहित है।

बंगाली साहित्य

10वीं और 12वीं शताब्दी के मध्य रचित चरयापद नामक लोक गीत बंगाली भाषा के प्रारंभिक नमूने कहे जा सकते हैं। 13वीं शताब्दी के मध्य में बंगाल पर तुर्कों की विजय ने संस्कृत के महत्व को कम कर दिया और साहित्यिक माध्यम के रूप में लोक विषयों और विधाओं की महत्ता में वृद्धि हुई। 15वीं शताब्दी तक बंगाली साहित्य में तीन मुख्य प्रवृत्तियों ने जन्म लियाः (i) वैष्णव भक्ति काव्य, (ii) महाकाव्यों के अनुवाद और काव्यों के रूपांतर, और (iii) *मंगल काव्य*। चंडीदास (15वीं शताब्दी) बंगाल के प्रथम प्रमुख वैष्णव भक्ति कवि थे, जिन्होंने राधा और कृष्ण के प्रेम पर गीतात्मक काव्य की रचना की। बंगाल के प्रसिद्ध वैष्णव संत चैतन्य, चंडीदास के भक्ति गीतों की आध्यात्मिकता से प्रभावित थे। संभवतः चंडीदास के समकालीन एक अन्य कवि, विद्यापति ने अपने भक्ति गीतों को मैथिली बोली में रचा परन्तु बाद में वैष्णव आंदोलन के प्रभाव से उनके कई गीतों को बंगाली में अपना लिया गया। चैतन्य और उनके आंदोलन ने बंगाली में वैष्णव साहित्य को और प्रोत्साहन दिया। कई वैष्णव कवियों ने चैतन्य से, उनके काल में और उनकी मृत्यु के बाद भी, प्रेरणा प्राप्त की। वैष्णव कवियों में से कुछ मुस्लिम भी थे। बंगाली साहित्य की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति, जो 15वीं शताब्दी के प्रारंभ में शुरू हुई, महाकाव्यों और अन्य संस्कृत धर्मग्रंथों से प्रेरित थी। सुल्तान हुसैन शाह (1493-1519) और उसके उत्तराधिकारी नुसरत शाह (1519-32) ने बंगाली साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। उनके शासन काल में दो बंगाली कवियों कवीन्द्र और श्रीकर नंदी द्वारा *महाभारत* को बंगाली पदों में रूपांतरित किया गया। 15वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, कृतिवास ओझा ने वाल्मिकी की संस्कृत रामायण का बंगाली काव्य-रूपांतर प्रस्तुत किया। मालाधर बसु ने वैष्णव संस्कृत ग्रंथ *भागवत पुराण* का रूपांतर 15वीं सदी के अंत में बंगाली में किया जो *श्रीकृष्णविजय* के नाम से प्रसिद्ध हुआ। *महाभारत* का बंगाली में दूसरा और लोकप्रिय अनुवाद कासीराम ने किया। बंगाली में अनुवादित और रूपांतरित इन रचनाओं ने मध्यकालीन बंगाली सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया। बंगाली साहित्य की तीसरी प्रवृत्ति *मंगल काव्य* की उत्पत्ति से प्रारंभ होती है। ये साम्प्रदायिक काव्य-वृत्तांत थे जो देवी-देवताओं के मध्य संघर्षों पर केन्द्रित होते थे। परन्तु इनमें मानवतावादी तत्व भी उपस्थित थे क्योंकि उनमें आम जनता की आकांक्षाओं और कष्टों का चित्रण होता था। मानिक दत्त और मुकुन्दराम, 15वीं और 16वीं शताब्दियों के अंतिम वर्षों में, *मंगल काव्य* के दो प्रमुख कवि थे।

असमी साहित्य

हेम सरस्वती असमी भाषा की प्रथम कवयित्री थीं। उन्होंने 13वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में *प्रह्लाद* चरित और *हर-गौरी सम्वाद* की रचना की। उसके समकालीन कवि हरिहर विप्र ने अपनी कविताओं के लिए *रामायण* और *महाभारत* के प्रसंगों को आधार बनाया। 14वीं शताब्दी के बाद कमाटा और चाचर असमी साहित्य के विकास के केन्द्र बने। माधव कुंडाली 14वीं शताब्दी के सबसे लोकप्रिय असमी कवि थे जिन्होंने *रामायण* को, असम में, वहाँ के आम लोगों की भाषा में प्रस्तुत कर लोकप्रिय बनाया। उनकी भाषा, हेम सरस्वती और हरिहर विप्र की तुलना में अपेक्षाकृत कम संस्कृतीय और आम लोगों की भाषा के निकट थी। 15वीं शताब्दी के दूसरे भाग में शंकरदेव के नेतृत्व में वैष्णव भक्ति आंदोलन की प्रगति ने असमी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। *कीर्तनघोष* को असमी भाषा की सबसे महत्वपूर्ण वैष्णव धार्मिक कृति माना जाता है। यह भक्ति-गीतों का संग्रह था जिनमें से अधिकांश शंकरदेव द्वारा रचित थे, परन्तु अन्य कवियों का भी इसमें योगदान रहा। शंकरदेव ने कई नाटकों (*अंकिया नाट*) की भी रचना की जो पौराणिक कथाओं पर आधारित थे। उन्होंने एक नई शैली की भक्ति-कविता की रचना की जो बरगीत (*ब्रगीत*) कहलाई। शंकरदेव के शिष्य माधव देव (1489-1596) ने भी कई साहित्यिक कृतियों की रचना की और बरगीत की काव्य-शैली को समृद्ध बनाया।

उड़िया साहित्य

13वीं-14वीं शताब्दियों के दौरान उड़िया भाषा को साहित्यिक स्वरूप प्राप्त हुआ। सरलादास (14वीं सदी) उड़ीसा के प्रथम सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उसने उड़िया में महाभारत की रचना की जिसे ओडिशा के लोग एक महान् महाकाव्य मानते हैं। उड़िया साहित्य ने 16वीं सदी के प्रारंभ में एक नये युग में प्रवेश किया जब वहाँ चैतन्य के प्रभाव के फलस्वरूप वैष्णव भक्ति आंदोलन का प्रसार हुआ। चैतन्य के कई शिष्यों ने भक्ति संबंधी संस्कृत रचनाओं का उड़िया भाषा में अनुवाद या रूपांतरण किया। चैतन्य के निकट सहयोगियों में से एक जगन्नाथ दास थे जो अपने समय के उड़िया साहित्य का प्रमुख स्तम्भ थे। उनके द्वारा किया गया *भागवत् पुराण* का उड़िया अनुवाद आम जन में बहुत लोकप्रिय हुआ।

मराठी साहित्य

मराठी भाषा में छंद-रूप में साहित्य 13वीं शताब्दी के दूसरे भाग से प्रारंभ हुआ। प्रारंभिक मराठी साहित्य पर शैव नाथपंथियों का प्रभाव रहा। दो सर्वाधिक प्रारंभिक मराठी कृतियाँ – *विवेक दर्पण और गोरखगीता* – नाथपंथी परंपरा से संबंधित थीं। इस युग का सबसे प्रमुख कवि मुकुन्दराज नाथपंथी परंपरा से संबंधित था और उसने विशुद्ध लोकप्रिय भाषा में *विवेक सिंधु* की रचना की। मराठी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव महानुभाव पंथ से संबंधित कवियों का पड़ा, जिसका उद्भव 13वीं शताब्दी में हुआ था।

महानुभाव संत-कवि प्रारंभिक मराठी भक्ति साहित्य के जनक में से थे, जिन्होंने मराठी कोश-कला, टीका, व्याकरण, छंद शास्त्र और अलंकार शास्त्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महाराष्ट्र के वारकरी भक्ति संत-कवियों ने मराठी भाषा में भक्ति साहित्य को और प्रचारित किया। उनमें से प्रथम ज्ञानदेव (13वीं सदी) थे। उन्होंने *भागवत् गीता* पर एक टीका लिखी। यह *भावार्थ दीपिका* कहलाई परन्तु इसे लोकप्रिय रूप में ज्ञानेश्वरी कहा जाने लगा। यह वारकरी परंपरा से संबंधित महाराष्ट्रीय वैष्णव भक्ति संतों का आधारभूत ग्रंथ है। वारकरी परंपरा से ही एक अन्य संत-कवि नामदेव (1270-1350) थे। उन्होंने मराठी में बड़ी संख्या में *अभंग* (छोटी गीतमय कविता) की रचना की। उन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की और बाद में उनके पदों को सिख धर्मग्रंथ आदि ग्रंथ में सम्मिलित किया गया।

मध्यकालीन महाराष्ट्र के दो अन्य महान् संत-कवि एकनाथ (1548-1600) और तुकाराम (1598-1649) मुगलकाल से संबंधित थेः उन्होंने भी मराठी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गुजराती साहित्य

राजस्थानी और गुजराती दोनों ही भाषाओं की उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से हुई। गुजराती साहित्य के विकास का प्रथम दौर 15वीं शताब्दी के मध्य तक जारी रहा। इस काल में गुजराती साहित्य में मुख्य रूप से दो साहित्यिक शैलियाँ विकसित हुईं – *प्रबंध* या वर्णनात्मक कविता और ***मुक्तक*** या लघु कविता। प्रथम श्रेणी में वीर-गाथाएँ, प्रेम-कथाएँ और रास अथवा लंबी कविताएँ सम्मिलित थीं। उन कविताओं की विषय-वस्तु में ऐतिहासिक विषय थे जो कथा-साहित्य, लोकप्रिय दंत-कथाओं और जैन मिथक साहित्य से अलंकृत थे। मुक्तकों या लघु कविता की दूसरी श्रेणी ने विभिन्न शैलियों जैसे *फागु, बारामासी* और *छापों* को अपनाया। *फागु* का अर्थ एक लघु गीतमय कविता से है जिसमें *विरह* (अलगाव) पर विशेष ध्यान दिया जाता है। गुजराती साहित्य के इतिहास का दूसरा युग 15वीं सदी के अंतिम वर्षों में वैष्णव भक्ति कविता के प्रसार से प्रारंभ हुआ। नरसिम्ह मेहता (1414-1480) एक प्रमुख गुजराती भक्ति कवि थे। उन्होंने अपनी कविताओं द्वारा वैष्णव भक्ति को गुजरात में लोकप्रिय बनाया।

बोध प्रश्न-5

1) क्षेत्रीय भाषाओं की उत्पत्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

2) उर्दू भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की प्रक्रिया को समझाइए।

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित कथनों के सामने सही (✓) या गलत (✗) का चिह्न लगाएँ।

अ) हिंदी साहित्य के विकास के दूसरे चरण को भक्ति काल कहा जाता है। ( )

ब) कबीर *सगुण* भक्ति कवि थे जो एक मानवीय रूप तथा लक्षणों से युक्त ईश्वर में विश्वास करते थे। ( )

स) नामदेव द्वारा बड़ी मात्रा में *अभंग* की रचना की गई। ( )

द) *प्रबंध* और *मुक्तक* मराठी सहित्यिक शैली की विधाएँ थीं। ( )

1.10.3 दक्षिण भारतीय भाषाओं में साहित्य

इस भाग में दक्षिण भाषाओं में लिखे गए साहित्य की विवेचना की गई है।

तमिल साहित्य

चोल साम्राज्य के पतन के साथ ही तमिल साहित्य का महान् युग समाप्त हुआ। फिर भी, लेखक और कवि तमिल साहित्य में अपना योगदान देते रहे। विल्लीपुत्तुरार, जिसका संबंध संभवतः 13वीं सदी से था, उस युग का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक नाम था। उन्होंने *महाभारत* का तमिल अनुवाद प्रस्तुत किया जो भारतम् कहलाया और तमिल-भाषी लोगों में लोकप्रिय हुआ। उन्होंने तमिल कविता में संस्कृत शब्दों और साहित्यिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग प्रारम्भ किया। दूसरा महान् कवि और विल्लीपुत्तुरार का समकालीन, अरुणागिरिनाथ था। उसने मुरुगन देवता की प्रशंसा में एक प्रगीतात्मक और भक्ति रचना – *तिरुप्पगल* – की रचना की। इस युग में वैष्णव विद्वानों द्वारा विस्तृत टीका भी लिखी गई। संगम युग की साहित्यिक कृतियों जैसे तोलकाप्पियम और कुराल पर भी टिका लिखी गई। ये टीकाएँ मध्यकालीन तमिल-गद्य के मॉडल हैं जो अपनी स्पष्टता और संक्षिप्तता के लिए प्रसिद्ध हैं। एक अन्य प्रमुख लेखक, कचिअप्पा शिवाचार्य ने भगवान सुब्रमण्य की स्तुति में कन्द-पुराणम् की रचना की।

तेलुगु साहित्य

13वीं सदी से तेलुगु साहित्य का उन्नति काल प्रारंभ हुआ। 13वीं और 14वीं शताब्दियों के दौरान संस्कृत कृतियों के तेलुगु अनुवाद और रूपांतर प्रकाशित हुए। 14वीं शताब्दी के प्रथम भाग का प्रमुख तेलुगु कवि ऐर्राप्रगदा था। उन्होंने साहित्यिक लेखन की चम्पु शैली (गद्य और पद्य की मिश्रित शैली) को प्रचलित किया। इस शैली में उसने रामायण की रचना की। उन्होंने महाभारत के एक भाग और एक अन्य वैष्णव संस्कृत कृति, हरिवंश का तेलुगु में अनुवाद किया। श्रीनाथ (1365-1440) एक अन्य प्रमुख तेलुगु लेखक था। उन्होंने श्रीहर्ष के नैषद्ध काव्य का तेलुगु अनुवाद किया। उन्होंने ऐतिहासिक प्रेम विषयों पर छंदों की रचना की और उन्होंने तेलुगु साहित्य में शास्त्रीय प्रबंधों के युग की आधारशिला रखी। उनका समकालीन, पोटाना, भी एक महान् कवि था जिसने *भागवत् पुराण* को तेलुगु में अनुदित किया। तेलुगु साहित्य ने, विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय के शासन काल में सर्वोच्च ऊँचाईयाँ प्राप्त की, जो स्वयं संस्कृत और तेलुगु के कवि थे और तेलुगु में *अमुक्तमाल्यदा* की रचना की। उन्होंने कई तेलुगु कवियों को संरक्षण प्रदान किया जिनमें से प्रमुख पेद्दाना था। पेद्दाना ने तेलुगु में *मनु-चरित* की रचना की। इस काल के तेलुगु साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता तेलुगु भाषा पर संस्कृत का बढ़ता हुआ प्रभाव था।

कन्नड़ साहित्य

कन्नड़ साहित्य का प्रारंभिक काल (12वीं सदी तक) जैन लेखकों से प्रभावित रहा। 12वीं शताब्दी के मध्य से, वीरशैववाद – एक लोकप्रिय धार्मिक आंदोलन – ने कन्नड़ भाषी क्षेत्र के साहित्य और लोगों को प्रभावित किया। वीरशैव आंदोलन के प्रवर्तक बासव और उसके अनुयायियों की धार्मिक साहित्यिक रचनाओं (वचन) ने मध्यकालीन कन्नड़ साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया। चौदहवीं

सदी के उत्तरार्द्ध का एक वीरशैव कवि, भीम कवि ने बासव पुराण की रचना की। उससे पूर्व 13वीं सदी के दो अन्य वीरशैव कवियों, हरीश्वर और राघवंका ने अपनी रचनाओं को नवीन कन्नड़ शैली में लिखा जो बाद में लोकप्रिय हुए। परवर्ती होयसल शासकों ने कई कन्नड़ कवियों और लेखकों को संरक्षण प्रदान किया। उनमें से एक, रूद्र भट्ट ने *चम्पु शैली* में *जगन्नाथ विजय* की रचना की। यह रचना, संस्कृत कृति *विष्णु पुराण* की रूपांतरित रचना थी। 14वीं और 16वीं शताब्दियों के मध्य, विजयनगर राजाओं व उनके सामंतों के संरक्षण में कन्नड़ साहित्य का और विकास हुआ। इस युग के महान् कवियों में से एक कुमार व्यास थे जिन्होंने 15वीं शताब्दी के मध्य में *महाभारत* का कन्नड़ अनुवाद प्रस्तुत किया।

मलयालम साहित्य

दक्षिण भारतीय भाषाओं में मलयालम का इतिहास सबसे नवीन है। यह मालाबार प्रदेश में तमिल की उप-भाषा के रूप में विकसित हुई। धीरे-धीरे इसने स्वयं को तमिल से मुक्त कर 14वीं शताब्दी में एक स्वतंत्र दर्जा प्राप्त किया। मालाबार क्षेत्र का तमिलनाडु से राजनीतिक अलगाव और विदेशियों द्वारा नवीन भाषाई शैलियों के प्रचलन करने से मलयालम का एक स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास संभव हुआ। अति प्रारंभिक साहित्य मौखिक शैली का था जिसमें गीत और गाथाएँ होती थीं। प्रारंभिक साहित्यिक रचना 14वीं शताब्दी की राम *चरितम्* थी। 16वीं सदी से मलयालम पर संस्कृत के गहरे प्रभाव का सिलसिला प्रारंभ हुआ और इसने संस्कृत के कई तत्वों को ग्रहण किया।

बोध प्रश्न-6

1) 13-15वीं शताब्दियों में तेलुगु भाषा के विकास की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) क्या आप इस मत से सहमत हैं कि मलयालम दक्षिण भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक नवीन भाषा है?

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित कथनों के सामने सही (✓) या गलत (×) का चिह्न लगाएँ:

अ) तमिल साहितय का महान् युग उत्तर-चोल काल में प्रारंभ हुआ। ( )

ब) रुद्र भट्ट ने *जगन्नाथविजय* चेम्पू शैली में लिखी। ( )

स) कृष्णदेवराज ने तेलुगु में अमुक्तमाल्मदा लिखी। ( )

द) कन्नड़ में बासव़ की धार्मिक साहित्यिक कृतियाँ वचन कहलाती हैं। ( )

1.11 सारांश

उत्तर भारत में मध्यकालीन इतिहास लेखन की दो परंपराएँ मौजूद थीं – अरबी और फारसी। जहाँ अरबी इतिहास लेखन को वास्तव में 'युग' का इतिहास कहा जा सकता है; वहीं फारसी इतिहास परंपरा राजवंशीय इतिहास पर केन्द्रित है। भारत में मुख्य रूप से फारसी इतिहास परंपरा की प्रधानता रही। दिल्ली सल्तनत के राजनैतिक इतिवृत्तों में मिन्हाज की *तबकात हालांकि,* राजनैतिक विवरणों और कालक्रम पर बेहद सटीक है लेकिन यह इलबरी वंश और उसके शासकों के बारे में नीरस विवरणों से भरी है। इसके विपरीत, हालांकि बरनी ने भी उसी फारसी इतिहास परंपरा में लिखा था परन्तु उनके इतिहास का विश्लेषण बहुत व्यापक है और आम जनता के जीवन पर प्रकाश डालता है और इतिहास के बारे में अधिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है। मुगलों के तहत राजनैतिक इतिवृत्तों की एक श्रृंखला रची गयी। लेकिन अबुल फज़ल के साथ नयी शुरुआत होती है। उनके द्वारा तर्क और तर्कसंगत विश्लेषण पर जोर देने के साथ इतिहास लेखन परंपरा में एक नया आयाम जुड़ गया। इतिवृत्तों के वृत्तांतों के अलावा मध्यकाल आधिकारिक दस्तावेजों

(*दस्तूर-उल अमल*), *इंशा* और सूफ़ी *मलफ़ूज़* साहित्य में समृद्ध हैं। अरब भूगोलवेत्ताओं और यूरोपीय यात्रियों के वृत्तांत इस अवधि की ऐतिहासिक घटनाओं को नया अफ्रीकी-यूरोपीय परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं। ये रिकॉर्ड तब और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं जब किसी यात्री के वृत्तांत में अनन्य अवलोकन प्राप्त होते हैं, जो कहीं और नहीं मिलते हैं। हालांकि मध्यकालीन इतिहास लेखन में फारसी ऐतिहासिक परंपरा का वर्चस्व था, परन्तु क्षेत्रीय इतिहास और परंपराएं और भाटों के वृत्तांत अत्यन्त उपयोगी हैं।

इस इकाई में हमने सल्तनत काल में भाषा और साहित्य की प्रगति का जायजा भी लिया। इस काल की संस्कृत रचनाओं की गुणवत्ता में गिरावट पर यहाँ ध्यान दिया गया है। क्षेत्रीय भाषाओं और साहित्य के विकास के लिए उत्तरदायी कारणों को रेखांकित किया गया है। इस काल के संस्कृत, फारसी और क्षेत्रीय साहित्य के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। यह विश्लेषण हमें यह बताता है कि संस्कृत और फारसी भाषा में आदान-प्रदान की प्रक्रिया के फलस्वरूप सांस्कृतिक संश्लेषण संभव हो सका जो इस काल में उर्दू की उत्पत्ति और विकास से स्पष्ट है।

1.12 शब्दावली

अर्ज़दाश्त	याचिका
चम्पू	गद्य तथा पद्य का मिश्रित रूप
दस्तूर-उल अमल	प्रशासनिक या राजकोषीय नियम
हस्ब-उल हुक्म	सम्राट के निर्देश पर एक मन्त्री द्वारा जारी किया गया आदेश
फरमान	राजा के आदेश
मलफ़ूज़ात	सूफ़ी संतों के संवाद
मुक्तक	लघु कविताएँ
परवाना	राजा द्वारा अपने अधीनस्थों को जारी किये गये आदेश/निर्देश
प्रबंध	खंड काव्य

1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 1.2 देखें

2) भाग 1.2 देखें

बोध प्रश्न-2

1) भाग 1.3.1 देखें

2) भाग 1.3.4 देखें

3) भाग 1.3.5 देखें

बोध प्रश्न-3

1) भाग 1.4 देखें

2) भाग 1.4 देखें

3) भाग 1.5 देखें

4) उप-भाग 1.6.2 देखें

बोध प्रश्न-4

1) भाग 1.7 देखें

2) भाग 1.7 देखें

3) उप-भाग 1.8.2 देखें

बोध प्रश्न-5

1) उप-भाग 1.10.1 देखें

2) उप-भाग 1.10.2 देखें

3) उप-भाग 1.10.2 देखें

बोध प्रश्न-6

1) उप-भाग 1.10.3 देखें

2) उप-भाग 1.10.3 देखें

3) उप-भाग 1.10.3 देखें

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

बेन्द्रे, वी. एस्कृ, (1944) *स्टडी ऑफ मुस्लिम इन्सक्रिप्शन्स* (बॉम्बेः कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस).

हबीब, मोहम्मद, (1950) 'चिश्ती मिस्टिक रिकॉर्डस ऑफ द सल्तनत पीरियड', *मिडिवल इंडिया क्वाटरली*, भाग 1.

हबीब, मोहम्मद, (1927) 'हजरत अमीर खुसरो ऑफ दिल्ली', बम्बई, पुनः मुद्रित, *कलैक्टेड वर्क्स ऑफ प्रोफेसर मोहम्मद हबीब*, सं. के. ए. निज़ामी, नई दिल्ली.

हार्डी, पीटर, (1966) *हिस्टोरियन्स ऑफ मिडिवल इंडिया* (लंदनः लूज़ाक एंड कंपनी).

हसन, मोहिबुल, (2018 {1982}) *हिस्ट्री एन्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मिडिवल इंडिया* (दिल्लीः आकार बुक्स).

हुसैन, महदी, (1976) *द रिहला ऑफ इब्न बतूता* (बड़ौदाः ओरिएन्टल इन्सटीट्यूट).

निज़ामी, के. ए., (1982) *ऑन हिस्ट्री एन्ड हिस्टोरियन्स ऑफ मिडिवल इंडिया* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहर लाल).

प्रसाद, पुष्पा, (1990) *संस्कृत इन्सक्रिप्शन्स ऑफ दिल्ली सल्तनत : 1191-1526* (दिल्लीः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

सिद्दीकी, आई. एच., (2014) *इन्डो-पर्शियन हिस्टोरियोग्राफी टू द फोर्टिन्थ सेन्चुरी* (नई दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

ज़की, मुहम्मद, (2009) *अरब एकाउटंस ऑफ इंडिया (ड्यूंरिग द फोर्टिन्थ सेन्चुरी)*, (दिल्लीः इदाराह-ए अदबियात-ए दिल्ली).

1.15 शैक्षणिक वीडियो

हिस्टोरियोग्राफी एन्ड सोर्सिज़ ऑफ देहली सल्तनत

https://www.youtube.com/watch?v=LcL2c-NM0lA-t=47s